हरिबल मच्छी

प्रकाशक

बृहद् (तपा) गच्छीय श्रीपूज्य जैनाचार्य

श्रीमद्[illegible]सूरीश्वर शिष्य

पण्डित काशीनाथ जैन

कलकत्ता

२०१ हरिसन रोड के नरसिंह प्रेस में

पण्डित काशीनाथ जैन

द्वारा मुद्रित

सन् १९५६

प्रथम-संस्करण १०००] [मूल्य ||)

भूमिका

लीजिये, आज यह हमारा बीसवाँ उपहार आपके कर-कमलोंमें उपस्थित किया जा रहा है। आशा है, पहलेके पुष्पोंके अनुसार इसे भी सप्रेम अपनाकर हमारे उत्साहको उन्नत करेंगे। यदि आप सज्जनोंकी हमपर कृपा बनी रही और हमारा उत्साह एवं स्वास्थ्य बना रहा तो कुछ समयके अनन्तर और भी इसी तरहके छोटे-मोटे प्रेम-पुष्प आपके कर-कमलोंमें नजर किये जायेंगे।

वर्त्तमान समयके नवयुवक, बालक एवं बालिकाएँ इधर-उधरके कपोल-कल्पित उपन्यास और कुत्सित कहानियाँ पढ़कर अपनी मनो-वृत्तियोंको दूषित कर डालते हैं। फलतः समयान्तर होने पर वे अपने धर्म एवं कर्मसे च्युत होते हुए भीषण दुरावस्थामें जा गिरते हैं। यदि इसका एकमात्र निदान कारण खोजा जायगा तो केवल हिन्दी जैन साहित्यका अभावही नजर आयेगा।

प्रस्तुत समयमें हिन्दी जैन सरल साहित्यके प्रकाशनकी बड़ी जरूरत है। सरल साहित्यके कारण पाठकोंको पढ़नेमें अधिक अभिरुचि हुआ करती है और वे क्रमशः समयान्तरमें उच्च साहित्यके प्रेमी बन जाते हैं। हमें तो पूर्ण विश्वास है, कि यदि हमारे नवयुवक, बालक एवं बालिकाओंको पढ़नेके लिये इस तरहका

सरल साहित्य दिया जाय तो वे अपना भविष्य बहुतही उन्नत एवं उज्ज्वल कर सकेंगे। जैन-समाजमें सरल साहित्यके प्रकाशनकी ओर पूरा जोर दिया जायगा तो निश्चय समाजमें अपूर्व शक्तिका सञ्चार होकर धर्मोन्नति एवं समाजोन्नति होगी।

इस अभावकी पूर्त्ति करना हमारी समाजके अग्रगण्य एवं धनी मानी सज्जनोंके हाथ है। वे लोग चाहें तो हिन्दी जैन साहित्यका प्रचार यथेष्ठ रूपसे करवा सकते हैं। किन्तु इस समय हमारी समाजका दुर्भाग्य है, कि समाजके नेताओंको इस विषयके लिये जरा भी खयाल नहीं। अस्तु!

प्रस्तुत पुस्तकमें धर्मवीर हरिवल माँझीके चरित्र चित्रणके साथ-साथ अहिंसाके आदर्श महात्म्यको भी चित्रित किया गया है। अहिंसा-पालनका अद्भुत प्रभाव इस पुस्तकके अवलोकनसे स्पष्ट विदित होता है। हरिवल मच्छीको केवल एक मछलीके छोड़ देने पर कितना पुण्योपार्जन हुआ है, इस घटनाको जानकर स्वयं पाठक-गण अहिंसाके महत्वको समझ लेंगे।

यहाँपर पाठकोंसे हमारा निवेदन है, कि प्रस्तुत पुस्तकके छपते समय हमारे स्वास्थ्यकी अस्वस्थताके कारण प्रूफ संशोधनमें जो त्रुटियें रह गयीं हैं उसके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

३०—४—२६
२०१, हरिसन रोड,
कलकत्ता।

आपका—
काशीनाथ जैन

अहिंसाके पालनसे भाग्योदय।

धन धान्य और सुवर्णादिकसे परिपूर्ण काञ्चनपुर नामक एक समृद्धिशाली नगरमें परम प्रतापी वसन्तसेन नामक राजा राज्य करते थे। उनकी पटरानीका नाम वसन्तसेना था। वह इतनी सुन्दर थी, कि उसके रूपको देखकर इन्द्राणी भी लज्जित हो जाती थी, परन्तु उसके कोई सन्तान न थी। अनेक प्रकारके व्रत उपवासादि करने और मानतायें माननें पर उसे एक रूपवती राजकन्या उत्पन्न हुई। कन्या क्या थी, मानो नवयुवकोंके चित्तको उन्मत्त करनेवाली ऋतुराज वसन्तकी मूर्तिमान प्रतिमा थी। राजा वसन्तसेनने बड़े आनन्दके साथ उसका जन्मोत्सव मनाया और उसके रूप-लावण्यके अनुसार उसका नाम वसन्तश्री रख कर "यथा नाम तथा गुण" की कहावत चरितार्थ कर दी।

वसन्तश्रीने जब क्रमशः बाल्यावस्था अतिक्रमणकर, किशोरावस्था में पदार्पण किया, तब वसन्तसेन उसके लिये एक उपयुक्त वरकी खोज करने लगे। वर तो बहुत मिलते थे, परन्तु वसन्तसेनको कोई पसन्द न पड़ता था। बात यह थी कि जहां रूप मिलता था, वहाँ गुण न मिलता था और जहां गुण मिलता था, वहाँ रूप न मिलता था। इसीलिये खोजते-खोजते बहुत दिन बीत गये, परन्तु वसन्तश्रीके लिये कोई वर ठीक न हुआ।

दैवयोगसे उसी नगरमें भद्रक प्रकृतिका एक धीवर रहता था। वह जाल फैलाने और मछलियाँ पकड़नेमें बड़ा निपुण था। यही उसका वंश परम्परागत व्यवसाय था। ईश्वरने उसे रूपवान भी बनाया था। उसे देखकर कोई एकायक यह न कह सकता था, कि यह धीवर है। जैसा उसका रूप था, वैसीही उसके शरीरकी गठन भी थी। फलतः हरियल देखनेमें बड़ाही सुन्दर और क्षत्रियकुमार जैसा मालूम होता था। परन्तु दुर्भाग्यवश उसे जो स्त्री मिली थी, वह बड़ीही कर्कशा और मूर्ख थी। उसका नाम सत्या था। हरिबल उसके मारे व्याकुल रहता था। उससे सदैव उसे दबना पड़ता था। यदि वह उसे कुछ कहता, तो वह क्रुद्ध हो उससे झगड़ा करती थी। इस गृह-कलहके कारण हरिबलका जीवन भारसा हो रहा था। उसका सोनेका संसार मिट्टीमें मिला जा रहा था। क्यों न हो? किसीने कहा भी तो है, कि बुरे गाँवमें रहना, बुरे राजाकी सेवा करना, खराब अन्न खाना, क्रोधी स्त्रीके पाले

पड़ना, अनेक कन्यायें उत्पन्न होना और दरिद्री होना—यह छः बातें इस मृत्युलोकमेंही मनुष्यको नरकके समान दुःख देती हैं

विचारा हरिवल इसी तरह कष्टमय जीवन व्यतीत कर रहा था। उसे क्या मालूम था कि मेरे भाग्यमें राजा होना बदा है। परन्तु प्रारब्ध वह वस्तु है, जो एक रस्तेके भिखारीको क्षणमात्रमें छत्रपति और छत्रपतिको रस्तेका भिखारी बना देती है। पाठकोंको यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि कर्महीका दूसरा नाम प्रारब्ध है। इसलिये यदि कोई अच्छा कर्म करता है तो उसे अच्छा फल मिलता है और कोई बुरा कर्म करता है, तो उसे बुरा फल मिलता है। हरिवलके अब शुभ कर्मोंका उदय होनेवाला था, इस लिये नदीके तटपर एक दिन एक मुनिसे उसकी भेंट हो गयी। हरिवलने मुनिको देखकर श्रद्धापूर्वक उन्हें प्रणाम किया। मुनिने उसे धर्मलाभरूप आशीर्वाद दे पूछा-"क्यों भाई! तुम्हे धर्मके सम्बन्धमें कुछ मालूम है?"

हरिवलने कहा—भगवन्! मैं तो स्वकुलाचारको ही धर्म समझता हूँ, इसलिये उसीकी आराधना करता हूँ। इसके अतिरिक्त मैं और कोई धर्म नहीं जानता।

मुनिने कहा—हे भद्र! कुलाचारको धर्म नहीं कहा जा सकता। अनेकबार महानिन्दित और शास्त्रविरुद्ध कर्म भी वंश परम्परासे होते चले आते हैं, परन्तु उन्हें कुलाचार मानकर उसी तरह करते रहना धर्म नहीं है। यदि पूर्वजोंके समयसे किसी के यहाँ चोरी, दासत्व या कोई दुराचार होता चला आया हो,

तो उसे कुलाचार कहकर और उसे धर्म समझकर, करते रहना अधर्म ही कहा जायगा। कुलाचार सच्चा धर्म नहीं है। सच्चा धर्म तो जीवदया यानि अहिंसा है। इस धर्मसे वाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। जो लोग इस धर्मका पालन नहीं करते, वे निरन्तर दुःख भोग करते हैं; किन्तु जो इसका पालन करते हैं, उनके समस्त दुःख दूर होकर, उन्हें अनेक सुखोंकी प्राप्ति होती है। इस लिये यदि तुझे अपने दुःखोंसे उद्वेग हुआ हो और तू उन्हे दूर करना चाहता हो, किंवा तुझे सुखकी अभिलाषा हो, तो हे धीवर! तू जीवदया पालनेकी चेष्टा कर।

मुनिराजकी यह बातें धीवरको बहुत अच्छी लगीं, परन्तु जीव-हिंसा परही उसकी जीविका निर्भर होनेके कारण जीव-दयाका पालन उसे असम्भव प्रतीत हुआ। उसने हाथ जोड़कर मुनिराजसे कहा—कृपानिधान! जीव-दयाही सत्य धर्म है, यह मैं अच्छी तरह समझ गया; परन्तु घोड़ा घाससे मुहब्बत करे तो उसे भूखों मरना पड़े। मैं जातिका धीवर हूँ। मछ-लियोंको फँसाना यही मेरा नित्यकर्म है। इसीसे मेरी रोटी चलती है। यदि मैं आपके कथनानुसार जीव दयाका पालन करने लगूँ, तो अपने बाल-बच्चोंको क्या खिलाऊँ ?

मुनिराजने कहा—यदि तू संपूर्णरूपसे इस व्यावसायको नहीं छोड़ सकता, तो एक बात कर। नदीमें जाल फेंकतेही पहले पहल जो मछली फँसे, उसे तू जीवित छोड़ दिया कर। यदि तू इतना भी नियमित रूपसे करता रहेगा, तो जिस तरह वटके

पौधेको सींचते रहनेसे कुछ दिनोंके बाद एक बड़ा भारी वृक्ष तैयार हो जाता है, उसी तरह तेरा यह सुकृत्य भी सञ्चित होकर किसी दिन तुझे अतुल फल देगा।

इस नियमका पालन करना अपने लिये सहज समझकर हरिबलने मुनिराजकी बात स्वीकार कर ली। मुनिराज उसे धर्मलाभ दे वहाँसे चल पड़े और धीवर अपने नित्यकर्ममें प्रवृत्त हुआ।

आज हरिबलने ज्योंही नदीमें जाल डाला, त्योंही उसे उस नियमकी महिमा दिखाने और उसे प्रलोभनमें डालकर उस नियमसे विचलित करनेके लिए, पहलेही पहल एक बहुत बड़ी मछली उसमें आ फँसी। हरिबलने तुरन्त अपने लोभको संवरणकर, उस मछलीके गलेमें पहचानके लिये एक कौड़ी बाँध कर उसे जलमें छोड़ दिया। परन्तु फिर ज्योंही उसने जाल डाला, त्योंही फिर वही मछली जालमें चली आयी। हरिबलने फिर उसे उसी तरह छोड़ दिया, तिबारा जाल डाला तो फिर वही बात हुई। इस तरह उसने जितनी बार जाल डाला, उतनी बार वही की वही मछली फँसती रही। हरिबल इससे विचलित न हुआ। उसे अपनी प्रतिज्ञा अच्छी तरह स्मरण थी। इसीलिये प्रलोभनका कोई बल न चलता था। जब उसने देखा कि इस स्थानपर जाल डालनेसे बारम्बार वही मछली हाथ लगती है, तब वह दूसरी जगह जाकर जाल डालने लगा।

परन्तु आज उसकी परीक्षा हो रही थी, इसलिये दूसरी जगह भी जितनी बार जाल उसने डाला, उतनी बार वही मत्स्य हाथ लगा। कुछ देरके बाद हरिवलने वह जगह भी छोड़ दी, परन्तु तीसरी जगहमें भी वही हाल रहा। इसी तरह स्थान बदलते-बदलते शाम हो गयी, परन्तु हरिवलको एक भी और मछली न मिली। हरिवल हिमालयकी तरह अचल था। दूसरी मछली न मिलनेसे भूखों मरनेका डौल दिखायी देता था, परन्तु यह विपत्ति उसे विचलित न कर सकी। शामको—अन्तिमबार—जब फिर वही मछली जालमें आयी, तब हरिवलने फिर उसे उसी तरह निर्विकार चित्तसे जलमें छोड़ दिया। अँधेरा हो चला था, दिन भरकी मिहनतसे हरिवलका शरीर शिथिल हो रहा था, अतः अब जाल डालनेका न समयही था, न इच्छाही थी। हरिवलने उस मत्स्यको जलमें छोड़, जाल समेटकर खाली हाथ घर जानेकी तैयारी की। बस—परीक्षा पूर्ण हो गयी। प्रलोभन बेकार सिद्ध हुए। हरिवलके धैर्य और त्यागकी हद हो गयी। वह खाली हाथ, अपने कन्धेपर जाल रख, घरकी ओर चल पड़ा।

हरिवलने ज्योंही पैर उठाया, त्योंही पीछेसे उसे किसीकी आवाज सुनायी पड़ी। हरिवलने मुँह फेरकर देखा कि वही मत्स्य, जलसे अपना शिर बाहर निकालकर मनुष्यकी तरह बोल रहा है। हरिवल स्तम्भित हो सुनने लगा। मत्स्यने कहा—हरिवल! मैं तेरी हिम्मत, तेरा धैर्य और तेरा त्याग

हरिवल मच्छी

मत्स्यने कहा—हरिवल ! मैं वास्तवमें मत्स्य नहीं हूँ । मैं लवणसमुद्रका अधिष्ठायक देवता हूँ । मैंने तेरी दृढ़ता देखनेके लिये ही मत्स्यका रूप धारण किया था,

(पृष्ठ ७)

देखकर प्रसन्न हो गया हूँ। तुझे जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह तू खुशीसे माँग सकता है।

हरिवलने विस्मित हो कहा—तू मत्स्य होकर मुझे क्या देगा। मुझे तेरी बातपर विश्वास नहीं है।

हरिवलकी यह बात सुनकर मत्स्यने कहा—हरिवल! मैं वास्तवमें मत्स्य नहीं हूँ। मैं लवणसमुद्रका अधिष्ठायक देवता हूँ। मैंने तेरी दृढ़ता देखनेके लिये ही मत्स्यका रूप धारण किया था, परन्तु अब मुझे मालूम हो गया, कि तेरी प्रतिज्ञा अटल है बहुधा इस संसारमें लोग झंझटोंके कारण कोई व्रत लेतेही नहीं और जो लेते हैं, वह पालन नहीं करते। तेरी तरह व्रत लेकर उसे समुचित रूपसे पालन करनेवाले तो बहुतही कम मनुष्य दिखायी देते हैं। इसीलिये मैं तेरी दृढ़ता देखकर प्रसन्न हो उठा हूँ। इस समय तू जो माँगे वह देनेको मैं तैयार हूँ।

देवताकी यह बात सुन हरिवलने प्रसन्न होकर कहा—हे देव! मुझे इस समय किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं है। परन्तु यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे इस बातका वचन दीजिये, कि मैं जब किसी विपत्तिमें आ जाऊं तब आप मेरी रक्षा करेंगे। बस, मुझे यही वरदान दीजिये।

देवता "तथास्तु" कह अन्तर्धान हो गये। हरिवलको इस वरदानकी प्राप्तिसे पहले कुछ आनन्द हुआ, परन्तु बादको यह स्मरण आतेही, कि आज मुझे खाली हाथ घर जाना पड़ेगा और खाली हाथ देखतेही स्त्री न जाने कितना कलह करेगी—

उसका प्राण सूख गया। वह नगरके बाहर एक मन्दिरमें बैठकर आजकी घटनावली पर विचार करने लगा। वह कहने लगा कि मुझे सुकृत्यका फल जितनी जल्दी मिला, उतनी जल्दी शायदही किसीको मिला होगा। जातिका भी मैं धीवर हूँ। जीव हिंसाही मेरा नित्य कर्म है। अब तक मैंने न जाने कितने जीवोंकी हिंसा की होगी। ऐसी अवस्थामें यदि मैं अनन्तकाल तक तप करता, तब भी मेरा उद्धार न हो सकता था। परन्तु आज केवल एकही मत्स्यके छोड़नेके कारण मुझे मनवाञ्छित फलकी प्राप्ति हुई। अब मैं यदि यह व्यवसायही छोड़ दूँ और पूर्णरूपसे जीवदयाका पालन करने लगूँ तो न जाने कितने फलकी प्राप्ति हो। उन लोगोंको धन्य है, जो सदैव जीव-दयाका पालन करते हैं। मुझे धिक्कार है कि मैं अपनी जीविकाके लिये नित्यही इस प्रकार जीवोंकी हिंसा करता हूँ। यदि किसी दूसरी तरह मेरी जीविका चलने लगे तो मैं आजही इस सुकृतिको नष्ट करनेवाली जीवहिंसाको विष लताके समान त्याग दूँ।"

जिस समय हरिबल मन्दिरमें बैठा हुआ इस तरहकी बातें सोच रहा था, उसी समय एक ऐसी आश्चर्य जनक घटना घटित हुई, जिसने उसकी जीवनधाराकोही पलट दिया। हम पहलेही कह चुके हैं; कि उस नगरमें वसन्तसेन राजा राज्य करते थे और उन राजाके वसन्तश्री नामकी एक राजकन्या थी। एक दिन वह अपने राजमहलके झरोखेमें बैठी हुई सृष्टि

सौन्दर्यका रसास्वादन कर रही थी। उसी समय उस झरोखेके नीचेसे हरिबल नामक एक परमसुन्दर वणिकपुत्र जा निकला। उसे देखतेही राजकन्या उसपर मोहित हो गयी और मनमें कहने लगी; कि यदि यह पुरुष मेरा पति हो तो मेरे दिन बड़े चैनसे कट सकते हैं। यह विचार कर राजकन्याने उस वणिकपुत्रका परिचय प्राप्त करनेके लिये एक पत्र लिखकर उसके सामने फेंक दिया। वणिकपुत्रकी दृष्टि भी उस झरोखेमें बैठी हुई उस चन्द्र-मुखीकी ओर आकर्षित हो चुकी थी। पत्र मिलतेही वणिकपुत्रने फिर झरोखेकी ओर देखा। इसबार दोनोंकी चार आँखें हुईं। होनेके साथही दोनों एक दूसरेपर तनमनसे मुग्ध हो गये। वणिकपुत्रने देखा कि राजकन्या क्या है, मानो साक्षात् रति है। वणिकपुत्र भी साक्षात् इन्द्र किंवा कामदेवके समान रूपवान था। ऐसी अवस्थामें भला यह कब हो सकता था, कि किसीके मनमें विकार न उत्पन्न हो। कहनेका तात्पर्य यह है कि दोनों एक दूसरे पर अनुरक्त हो गये। इसके बाद एक सखी द्वारा राजकन्याने उस वणिकपुत्रका परिचय प्राप्त कर लिया। राजकन्याने यह भी कहला दिया कि मैं अमावस्याके दिन रात्रिके समय नगरके बाहर जो देवीका मन्दिर है, वहाँ दर्शनके बहाने आऊँगी, और वहींसे हमलोग इस नगरको अन्तिम नमस्कार कर कहीं ऐसे स्थानको चलेंगे, जहाँ निश्चिन्त रूपसे सानन्द जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

वणिकपुत्र भी राजकन्याके मोहमें पड़ चुका था, अतः राज-

कन्याने जो कुछ कहा, वह सब उसने स्वीकार किया और अमावस्याके दिन पहलेहीसे मन्दिरमें बैठकर प्रतीक्षा करनेका वादा किया। दैवयोगसे राजकन्या और वणिकपुत्रने जिस दिनका संकेत किया था, उसी दिन हरिवल धीवरको मछलियाँ न मिलनेके कारण वह अपनी कर्कशा स्त्रीके भयसे घर न जाकर उसी मन्दिरमें जाकर सो रहा।

मति किंवा बुद्धिभी कर्मानुसारही उत्पन्न हुआ करती है। इधर हरिवल धीवर उसी मन्दिरमें जाकर सो रहा और उधर हरिवल वणिकपुत्रकी मति बदल गयी। वह अपने मनमें कहने लगा, कि राजकन्या कामान्ध हो गयी है, इसलिये उसे कुछ सूझ नहीं पड़ता और वह मेरे साथ भग जाना चाहती है, परन्तु मैं ऐसा क्यों करूँ? स्त्रियोंका कौन विश्वास? वे तो सदा ही इस तरह मनुष्योंको फँसाकर उन्हें नरकाधिकारी बनाया करती हैं। कौन जानता है कि राजकन्याके साथ मेरा जीवन सुखसे व्यतीत होगा? भविष्यमें चाहे जो हो, इस-समय तो मैं अपराधीही कहलाऊँगा। मुझे अपने माता पिता और स्वजनोंका अकारणही त्याग करना पड़ेगा; घर और नगर छोड़ना होगा और यदि कहीं यह बात राजाको मालूम हो गयी तो अन्तमें प्राण दण्ड भी भोगना पड़ेगा। इसलिये ऐसे भयावह कार्यमें हाथ डालना ठीक नहीं।

यह सोचकर हरिवल संकेतके दिन देवीके मन्दिर न जाकर चुपचाप अपने घरमें जाकर बैठ रहा। राजकन्याका पाणिग्रहण

करनेके लिये यद्यपि वह लालायित हो रहा था, परन्तु उसके स्वाभाविक भयने उसे रोक रक्खा। क्यों न हो? किसीने कहा भी है कि वणिक जातिही डरपोक होती है। हरिबल आखिर वणिकपुत्र ही तो था?

निःसन्देह संसारमें जो वणिकपुत्रकी तरह दुर्बल हृदयके मनुष्य होते हैं, वे इस संसारमें न केवल सुखोंसेही वंचित रह जाते हैं; बल्कि वे अपना आत्मकल्याण भी नहीं कर पाते। वणिकपुत्रके भाग्यमें राजकन्याका पाणिग्रहण न बदा था, इसी लिये उसे कुमति सूझी और वह चुपचाप अपने घरमें बैठ रहा।

उधर राजकन्याने अपना निर्धारित कार्य पूर्ण करनेके लिये निश्चित दिनके कुछ पहलेहीसे अपनी माताके साथ कलह कर लिया और इस प्रकार उसने अपने लिये पृथक् रहनेकी व्यवस्था कर ली, जिससे निश्चित समयपर घर छोड़नेमें किसी प्रकारकी बाधा न पड़े। जब संकेतके अनुसार घर छोड़नेका समय आया तब वह भाँति-भाँतिके रत्न और वस्त्राभूषण अपने साथ ले घोड़ेपर सवार हो बाहर निकली। उस समय महलका फाटक बन्द हो चुका था और किसीको बाहर आने जानेकी आज्ञा न थी, परन्तु राजकन्याने द्वारपालको एक मुद्रिका—अङ्गुठी देकर किसी तरह फाटक खुलवा लिया।

अमावस्याका दिन था और मध्यरात्रिका समय। चारों ओर अन्धकारका एकछत्र राज्य फैला हुआ था। किसीको अपना पराया न सूझ पड़ता था। नीरवताने रात्रिकी भयंकरता

बढ़ानेमें अन्धकारका पूर्णरूपसे साथ दिया था। कभी-कभी किसी वन्य पशु पक्षीकी आवाज सुनायी दे जाती थी, परन्तु वह भी इस समय बड़ी भयानक मालूम होती थी। यह सब बातें किसी भी पथिकको विचलित करनेके लिये पर्याप्त थीं, परन्तु राजकन्या इनके कारण भयभीत या विचलित न हुई। हो भी कैसे सकती थी? वह तो इस समय मनोरथके रथपर सवार थी। उसका चित्त तो वणिकपुत्र पर लगा हुआ था। उसके शिरपर तो दुर्वासनाका भूत सवार था। इसीलिये यह सब भयंकरतायें उसे भयंकर न मालूम होती थीं और वह घोड़ेको एँड़ लगाती हुई उस मन्दिरकी ओर चली जाती थी।

जब राजकन्या उस देवी-मन्दिरके पास पहुँची, तब उसने हरिबलका नाम लेकर उसे पुकारा, परन्तु वहाँ तो संयोगवश हरिबल वणिकके बदले हरिबल मच्छी बैठा हुआ था। उसने जब देखा कि साक्षात देवीके समान एक तेजपुञ्ज राजकन्या अश्वारूढ़ खड़ी है और हरिबलको पुकार रही है, तब उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अधिक उत्तर न देकर मन्दिरके अन्दरसे केवल हुंकारही भर कह दिया। हुंकार सुनतेही राजकन्याने यह समझकर, कि अन्दरसे वणिकपुत्र बोल रहा है—कहा: प्राणनाथ! आइये। मैं आ गयी। चलो, अब शीघ्रही हम लोग इस स्थानको अन्तिम नमस्कार करें।

राजकन्याकी यह बात सुनतेही हरिबल ताड़ गया कि इस राजकन्याने हरिबल नामक किसी दूसरे पुरुषके साथ संकेत

किया है और उसीके साथ यह भाग जाना चाहती है। फिर वह अपने मनमें कहने लगा, कि इस समय यदि मैं अमला अपना परिचय न दूँ, तो अनायासही मुझे देवाङ्गना तुल्य इस स्त्रीकी प्राप्ति हो सकती है। जब यह हरिवलका नाम लेकर उसे स्पष्टरूपसे बुला रही है, तब मैंही वह हरिवल होकर क्यों न इसके साथ चला जाऊँ? मेरा नाम भी तो हरिवल है। सम्भव है कि मेरे पुण्यके उदयसे ही ऐसा हो रहा हो।

यह सोचकर हरिवल उस राजकन्याके साथ जानेको तैयार हुआ। वह अपने मनमें कहने लगा कि यह सब उस एक जीवकी हिंसा न करनेकाही फल है। यदि मैं सब जीवोंकी हिंसा करना छोड़ दूँ, तो मेरा न जाने कितना उपकार होगा। यह सोचकर, जिस तरह किसी दीन हीन दरिद्री मनुष्यको राज्य मिलनेपर वह अपना भिक्षापात्र वहीं छोड़ देता है, उसी तरह हरिवल अपना मत्स्य फँसानेका जाल वहीं छोड़कर मन्दिरके बाहर निकला।

जब हरिवल राजकन्याके पास पहुँचा, तब उसे वस्त्र और वाहन रहित देखकर राजकन्याने पूछा;—प्राणनाथ! आपकी यह अवस्था क्यों हो रही है? आपने तो घोड़ेपर सवार हो, बहुतसा धन अपने साथ लेकर आनेका वादा किया था। फिर भी ऐसा क्यों? क्या किसीने आपके वस्त्रालंकार छीन लिये या घरवालोंसे किसी प्रकारका कलह हो गया जो आप इस तरह दीन मलीन होकर पधारे हैं।

राजकन्याकी यह बात सुन हरिबल अपने मनमें कहने लगा, कि अब निःसन्देह मेरी पोल खुले बिना न रहेगी। यदि मैं राजकन्याके प्रश्नोंका उत्तर देनेकी चेष्टा करूँगा, तो इसी समय मेरी फजीहत होगी और हाथमें आयी हुई यह देवाङ्गना हाथसे निकल जायगी।

यह सोचकर चतुर हरिबलने हाँ या नाहीं कुछ भी न कह कर केवल हुंकारही भर कर दिया। राजकन्या यद्यपि हरिबलकी दुर्दशाका कारण जाननेके लिये बहुतही उत्सुक थी, परन्तु इस समय उसे भागनेकी धुन सवार थी, इसलिये उसने अधिक आग्रह करना उचित न समझा। उसने मान लिया कि शायद मेरी धारणा ठीक है और वास्तवमें किसीने इनके वस्त्राभूषण छीनकर इन्हें इसतरह दीनहीन बना दिया है।

यह सोचकर राजकन्याने हरिबलको अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण पहननेको दिये और कहा—"प्राणनाथ! मैं अपने साथ बहुत सा धन लेती आयी हूँ, इसलिये आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। ईश्वर हमारे सभी मनोरथ पूर्ण करेंगे।"

यह कहकर राजकन्या हरिबलके साथ अनेक प्रकारसे हास्य विनोद करने लगी, परन्तु हरिबलने तो मानों हुंकारके सिवा दूसरा उत्तर न देनेकी शपथ खा ली थी। उसकी यह लीला देखकर राजकन्या अपने मनमें कहने लगी—यह मनुष्य कुछ समझताही नहीं है या अहंकारी है, जो केवल हुंकारही भर करके रह जाता है। साथही यह भी सोचनेकी बात है,

कि यह मुझसे दूर-ही-दूर क्यों रहता है ? क्या यह मुझसे रुष्ट हो गया है, जो मेरी ओर आँख उठाकर देखता भी नहीं; या यह कोई औरही व्यक्ति है ?

यह सन्देह उत्पन्न होतेही राजकन्याने उसके पास जाकर ध्यानसे देखा तो वह वणिकपुत्रके बदले कोई दूसराही पुरुष निकला यह देखकर राजकन्या हाहाकार करने लगी। उसके शिरपर मानों भयंकर वज्र टूट पड़ा। वह अपने भाग्यको कोसने लगी। कहने लगी,—हा विधाता ! तुझे धिक्कार है। तूने मुझे किसी तरफकी न रखा ! मैं इधरसे भी गयी और उधरसे भी गयी। न घरकी रही न घाटकी। अब मैं कहाँ जाऊँ और क्या करूं ? मैंने अपना घर छोड़ा, माँ-बाप छोड़ा, ऐश्वर्यको अलाञ्जलि दी और लोकलाजको ताकपर रख दिया, फिर भी मणिके बदले काँचही मेरे हाथ लगा। यह सब मेरे स्वेच्छाचारका ही फल है। सबसे अधिक दुःखकी बाततो यह है, कि इसे वस्त्राभूषण रहित देखकर भी मैं यह न जान सकी कि यह कोई दूसराही पुरुष है ? अब मेरी क्या गति होगी ? क्या इसीके साथ मुझे जीवन व्यतीत करना होगा ? हा दैव ! इस तरह जीनेकी अपेक्षा तो मैं अब मर जाती तो बहुत अच्छा होता !

राजकन्याको इस तरह आकुल व्याकुल देखकर हरिबल अपने मनमें कहने लगा, कि अब इसके साथ ब्याह करने और आनन्द पूर्वक दिन बितानेकी आशा रखनी व्यर्थ है, क्योंकि यह

तो मुझे देख कर ही कटी हुई वनलताकी तरह मुरझा गयी। अब मैं क्या करूँ? मेरा तो कोई वस नहीं है। हाँ, यदि मेरे व्रतके प्रभावसे देवता मेरी सहाय करें, तो चाहे भलेही मेरा कुछ भला हो जाय।

यह सोचकर हरिवल मन-ही-मन देवी देवताओंका स्मरण करने लगा। उधर राजकन्या अपने मनमें कहने लगी, कि जो बात हो चुकी, उसके लिये अब सोच करना व्यर्थ है। सोच करनेसे कोई लाभ नहीं हो सकता। संभव है कि मेरे भाग्यमें यही पति लिखा हो। कर्मकी रेख पर कोई मेख नहीं मार सकता। विधाताका विधान अमिट होता है, इसलिये अब शोक छोड़ कर एक बार इस पुरुषका परिचय प्राप्त करना चाहिये और यह देखना चाहिये, कि इसके साथ मेरा जीवन निर्वाह हो सकता है या नहीं।

जिस समय राजकन्या यह विचार कर रही थी, उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि "हे सुभगे! यदि तू ऐश्वर्य और सुख चाहती हो तो इसके साथ विवाह कर। तुम दोनोंकी बड़ी उन्नति होगी। यह तेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है, जो तुझे ऐसा पति मिल रहा है।"

आकाशसे यह देववाणी सुनकर राजकन्याको बड़ा आनन्द हुआ। उसने बड़े प्रेमसे हरिवलको बुलाकर अपने पास बैठाया और तृषाके कारण गला सूख रहा था अतः कहींसे थोड़ा जल ले आनेकी प्रार्थनाकी। हरिवल तुरन्तही उठ खड़ा

हुआ और कहीं से पानी लाकर राजकन्याकी तृषा दूर की।

यह देख कर राजकन्या सोचने लगी, कि यह पुरुष बड़ाही पुरुषार्थी मालूम होता है। यदि ऐसा न होता, तो अँधेरी रातमें और अज्ञात स्थानमें देखते-ही-देखते जल कैसे खोज लाता। इसलिये यह निःसन्देह बलिष्ट पराक्रमी और साहसी पुरुष है।

राजकन्याकी मुखमुद्रा और बदली हुई चित्तवृत्तिको देखकर हरिबल भी समझ गया कि अब यह मुझे नहीं छोड़ सकती। इस समय दोनोंके हृदयमें एक दूसरेके प्रति अनुराग उत्पन्न हो रहा था और दोनोंके हृदय एक दूसरेके निकट आते जाते थे। इतने ही में सवेरा हो गया और सूर्य निकल आये, मानो वह उन दोनोंका प्रेम देखने और उसकी वृद्धि करनेके लिये ही आज शीघ्रता पूर्वक निकल आये हों!

जब सवेरा हुआ तब राजकन्याने देखा कि हरिबल बड़ा ही सुन्दर और रूपवान नवयुवक है। यह देखकर उसे बड़ी ही प्रसन्नता प्राप्त हुई और वह हरिबलसे कहने लगी—प्राणनाथ! सवेरा हो चुका है। यही लग्नका समय है, इसलिये आइये और सहर्ष मेरा पाणिग्रहण कीजिये। मैंने इस कार्यके लिये जो समय निर्धारित किया था, वह अब आ पहुँचा है।

राजकन्याकी यह बात सुनकर हरिबल अपने भाग्यकी सराहना करने लगा और कहने लगा कि यह सब जीवदयाके नियमका ही फल है। इसके बाद उसने सहर्ष राजकन्याके साथ गन्धर्व विवाह किया। उन दोनोंका विवाह क्या था,

मानो हरि साक्षात लक्ष्मीका पाणिग्रहण कर रहे थे। बस इसी दिनसे हरिबलके नसीबका सितारा भी चमक उठा।

इस प्रकार दोनों परिणय सूत्रमें बद्ध हो हास्य-विनोद और प्रेमकी बातें करते हुए प्रवास करने लगे। रास्तेमें एक गाँव मिला। हरिबलने राजकन्याके कथनानुसार उस गाँवमें जाकर एक बढ़िया घोड़ा खरीदा और कई दास दासी नौकर रक्खे। हाथमें धन होने पर भी भला कष्ट सहना किसे पसन्द पड़ सकता है?

इस तरह राजसी ठाठ बाटके साथ दोनों आगे चले। वे अपने रहनेके लिये कोई उपयुक्त नगर खोजते थे; परन्तु उन्हें कोई पसन्द न पड़ता था। किसी नगरमें कोई दोष दिखायी देता था, तो किसी नगरमें कोई। अन्तमें, अनेक देश-देशान्तर पार करनेके बाद विशालपुर नामक एक समृद्धि शाली नगर मिला। शुभ मुहूर्त्तमें हरिबलने उसमें प्रवेश किया। उसे वह अपने रहनेके लिये उपयुक्त प्रतीत हुआ। राजकन्यानेभी उसे पसन्द किया अनन्तर हरिबलने वहाँपर एक सतखंडा मकान किराये लिया और वहीं पर राजकन्या और दास दासियों सहित एक राजाकी तरह बड़े ठाठ-बाटके साथ रहने लगा।

लंका गमन

संसारमें ऐसे मनुष्योंकी कमी नहीं है, जो गरीबसे अमीर होने पर अपने पिछले दिन भूल जाते हैं। परन्तु सब लोग ऐसा नहीं करते। जिनमें कुछ भी मनुष्यत्व होता है, वे सदैव अपने पिछले दिनोंका स्मरण किया करते हैं और अपनी वर्त्तमान अवस्थाके लिये ईश्वरको धन्यवाद देते रहते हैं। हरिबल भी इसी कोटिका मनुष्य था। वह अपने मनमें नित्य सोचा करता था कि कहाँ मैं नीच धीवर और कहाँ यह राजकन्या और यह राजसी ठाठ बाँठ! कहाँ मेरी वह दरिद्रता और कहाँ यह ऐश्वर्य! कहाँ वह टूटी-फूटी झोपड़ी और कहाँ यह सतखंडा महल! स्त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम् देवो न जानाति कुतो मनुष्याः।

कुछ दिनोंके बाद हरिबलको यह विचार आया, कि यदि दैव कृपासे मुझे यह ऐश्वर्य और धन मिला है तो मैं इसका सदुपयोग क्यों न करूँ? यह विचार आते ही उसने दीन हीन और दुखी मनुष्योंको दान देना आरम्भ किया। इससे चारों ओर दूर-दूर तक उसका सुयश फैल गया। नगरमें भी यह

बात फैल गयी कि यहाँ कोई परदेशी राजकुमार आया है और वह याचकोंको नित्य मुक्त हस्तसे दान देता है। इससे सर्वत्र उसकी प्रशंसा होने लगी।

क्रमशः यह बात उस नगरके राजाके कान तक जा पहुँची। उसने बड़े सम्मानसे हरिबलको अपनी राज-सभामें बुला भेजा। सभा-मण्डपमें राजाने उसे एक उच्च आसन पर बैठाया और बड़ी देरतक उसके साथ वार्तालाप किया। चलते समय उसने हरिबलको बहुतसी बहु मूल्य चीजें भेट दीं और नित्य राज-सभामें आते रहनेके लिये अनुरोध किया। हरिबल तदनुसार नित्य राज-सभामें जाने लगा। धीरे-धीरे राजाके साथ उसकी गाढ़ मित्रता हो गयी और राजा उसके लिये कामधेनु समान हो पड़ा।

इस तरह राजाके साथ घनिष्टता हो जाने पर हरिबलने एक दिन उसे अपने यहाँ भोजन करनेके लिये निमन्त्रित किया। राजाने उसका निमन्त्रण सहर्ष स्वीकार कर लिया। हरिबलने परिश्रम पूर्वक नानाप्रकारके व्यञ्जन-शाक और पक्वान्न बनवाकर सरस भोजनकी व्यवस्था की। जब राजा अपने मन्त्री सहित हरिबलके यहाँ भोजन करने गया, तब हरिबलके आदेशानुसार वसन्तश्रीने उन्हें बड़े प्रेमसे परोसकर खिलाया। परन्तु दुर्भाग्य-वश यह निमन्त्रण हरिबलके लिये दुख और चिन्ताका कारण हो पड़ा। बात यह हुई, कि वसन्तश्रीके चन्द्रवदनकी चमक-दमक देखकर राजाकी आँखमें चकाचौंध लग गया। वह उस पर मोहित हो गया। कहने लगा—अँधेरे घरमें यह उजाला क्यों?

यह सुर सुन्दरी तो मेरे महलको आलोकित करने योग्य है? परन्तु यह कैसे हो सकता है? हाँ, यदि किसी तरह हरिवलका प्राण ले लिया जाय, तो यह अनायासही मेरे महलकी शोभा बढ़ा सकती है।

बस, यहींसे उपद्रवका सूत्रपात आरम्भ हुआ। राजा हरिवलका प्राणलेनेके लिये अनेक प्रकारके षड़यन्त्र करने लगा और मन्त्री उसे सहायता देने लगा। राज्यमें मन्त्रीके शिर पर बड़ा दायित्व रहता है। मन्त्री राजाका दाहिना हाथ कहलाता है, क्योंकि विना उसकी सालाह और सहायताके राजाका कोई भी कार्य पूर्ण नहीं होता। राजा तक जितनी पहुँच मन्त्रीकी होती है, उतनी और किसीकी नहीं होती, इसलिये मन्त्री चाहे तो उसे भली सलाह देकर भला और बुरी सलाह देकर बुरा बना सकता है।

दुर्भाग्यवश विशाल पुराधीशका मन्त्री पूरा खुशामदी टट्टू था। वह उन मनुष्योंमें न था, जो सदा न्याय और नीतिके पथ पर चलते हैं और दूसरोंको भी उसी मार्गके अनुसरणका उपदेश देते हैं। इसलिये जब उसने देखा कि राजाकी चित्तवृत्ति चञ्चल हो उठी है और वह हरिवलको मार कर वसन्तश्रीको अपने हाथमें करना चाहता है, तब वह भी उसे इस कार्यमें सहायता देने लगा। दोनोंने मन्त्रण कर यह स्थिर किया कि हरिवलका प्राण लेना हो, तो उसे कहीं ऐसी जगह भेजना चाहिये, जहांसे वह जीता न आ सके। ऐसा करनेसे उसकी

हत्याका कलंकभी न लगेगा, बदनामी भी न होगी और अनायासही कार्य सिद्ध हो जायगा।

इस परामर्शके अनुसार राजाने दूसरे दिन भरी सभामें कहा—मैं बड़ी धामधूमके साथ एक महोत्सव करना चाहता हूँ। उस महोत्सवमें, मेरी इच्छा है, कि सभी देशोंके राजा निमन्त्रित किये जायँ और लोगोंको तो निमन्त्रण पहुँचाना सहज है, परन्तु लंकापति विभीषण समुद्रके उस पार रहते हैं, इसलिये उनको निमन्त्रण पहुँचाना उतना सहज नहीं है। क्या मेरी राज-सभामें कोई ऐसा पुरुष है जो उन्हें मेरा निमन्त्रण पहुँचानेका बीड़ा उठा सके?

राजाकी यह बात सुन, सब लोग चुप हो रहे, क्यों कि यह बात सभी जानते थे, कि विभीषणको निमन्त्रण देने जाना और कालके मुँहमें जाना बराबर है। वहाँ जाकर फिर कोई लौट नहीं सकता। इसलिये जब किसीने उत्तर नहीं दिया, तब उस कपटी मन्त्रीने कहा—राजन्! क्या हमारी राज-सभामें एक भी ऐसा पुरुष नहीं है, जो इस कार्यको कर सके। खैर, मैं दूसरोंके सम्बन्धमें तो कुछ नहीं कह सकता; किन्तु मेरा विश्वास है, कि हमारे प्रिय मित्र हरिवल इसकार्यको अनायास ही कर सकते हैं। इनके समान वीर, साहसी और उत्साही पुरुष मैंने इस संसारमें नहीं देखा।

मन्त्रीकी यह बात सुन राजाने हरिवलकी ओर देखा। हरिवल संकोचवश, नाहीं न कर सका। उसने विभीषणके

पास जाना स्वीकार कर लिया। इससे राजा और मन्त्रीको बड़ा आनन्द हुआ। वे अपने मनमें कहने लगे, कि अब हमें अपनी मनचेती करनेमें किसी प्रकारकी बाधा न पड़ेगी। संसारमें लज्जा, शील और संकोच—यही तो वह चीजें हैं जो भले आदमीयोंको अनिच्छा होते हुए भी किसी समय कोई काम करनेके लिये मजबूर कर देती हैं और इससे धूर्तोंको अपना मनोरथ सिद्ध करनेमें सुविधा हो जाती है।

खैर, हरिवलने जब अपने घर जाकर वसन्तश्रीसे यह हाल कहा, तब उसे बड़ा विषाद हुआ ; क्यों कि उसे यह बात उसी दिन मालूम हो गयी थी, कि राजाका चित्त चञ्चल हो उठा है। उसने हरिवलसे स्पष्ट कह दिया, कि आपने राजाको उसदिन निमन्त्रित कर खिलाया पिलाया सो अच्छा न किया। जोंक यदि स्तनमें लगा दी जाय, तब भी वह रक्त ही शोषण करेगी। राजाका दिल साफ नहीं है। उसने आपका प्राण लेनेके लिये यह प्रपञ्च रचा है। आपने बिना कुछ सोचे समझे लंका जाना स्वीकार कर लिया, यह अच्छा न हुआ। वह लज्जा किस कामकी जिससे अपनी हानी हो? वह संकोच किस कामका जिससे अपने गले पर छूरी फिर जाय? वह शील और वह भोलापन किस कामका जिससे लोग अनुचित लाभ उठावें? अबभी कुछ नहीं बिगड़ा। आप कोई बहाना कर दीजिये और मेरी राय तो यह हैं कि यदि यह नगर छोड़ना पड़े तो इसे भी छोड़ दीजिये; पर लंका न जाइये।

वसन्तश्रीकी यह बात सुन हरिवलने कहा—प्रिये! जो बात मैं कह चुका, उसे अब मैं पलट नहीं सकता। प्राण भलेही चला जाय ; पर अब बात नहीं जा सकती। सज्जन पुरुषोंके मुँहसे जो बात निकलती है, वह शिला लेखकी तरह अमिट हो जाती हैं। चाहे शिर भलेहो कट जाय, चाहे सर्वस्व भलेही नष्ट हो जाय और चाहे कारावासकी असह्य वेदना भलेही भोग करनी पड़े, परन्तु वे अपनी कही हुई बात फिर स्वप्नमेंभी नहीं पलटते। मैंने भरी सभामें बीड़ा उठाया है, इसलिये मुझे यह कार्य करनाही होगा। यदि इससे हमे किसी विपत्तिका सामना करना पड़ेगा, तो वह हम लोग खुशीसे करेंगे। उस अवस्थामें दैव हमारी सहायता करेगा ; परन्तु इस तरह केवल भावी विपत्तिकी आशंका कर, प्रतिज्ञा भंग करना मैं उचित नहीं समझता। मुझे अपने प्राणके लिये किसी प्रकारका भय या चिन्ता नहीं है। चिन्ता केवल तुम्हारी है। संभव है, कि राजा मेरे चले जाने जाने पर तुम पर अत्याचार करे ; परन्तु मेरा विश्वास है, कि दैव तुम्हे अपने सतीत्वकी रक्षा करनेकी शक्ति देगा। तुमभी उसी पर विश्वास रक्खो और मुझे सहर्ष विदा करो।

हरिबलकी यह वीरोचित वाणी सुन वसन्त श्रीको बड़ा आनन्द हुआ और वह मन-ही-मन ऐसा पति प्राप्त करनेके कारण अपने भाग्यकी सराहना करने लगी। उसने पतिदेवको आलिङ्गन कर कहा—प्राणनाथ! यदि आपकी यही इच्छा है,

तो आप खुशीसे जा सकते हैं। आप मेरी ओरसे निश्चिन्त रहियेगा। जैसे वीर पुरुषोंको अपना वचन प्रिय होता है, वैसे ही वीर रमणियोंको अपना सतीत्व प्रिय होता है। वे भी अपने सतीत्वका मूल्य अपने प्राणसे अधिक समझती हैं। ईश्वर न करे, यदि मेरे सतीत्व पर कोई विपत्ति आयेगी, तो मैं उसकी रक्षामें अपना प्राण तक उत्सर्ग कर दूंगी। आप सहर्ष जाइये। यदि जीवन रहा, तो शीघ्रही हम लोग फिर एकत्र होंगे। अन्यथा परलोकमें तो अवश्य ही भेट होगी। आप वीर हैं और मैं वीराङ्गना हूँ। भावी विपत्तियोंकी आशंकासे वर्त्तमान समयमें कर्तव्यच्युत होना ठीक नहीं।

वसन्तश्रीकी इन उत्साह प्रद बातोंसे हरिबलका चित्त प्रफुल्लित हो उठा। उसने बार-बार उस स्नेहलताको आलिङ्गन कर उसे सान्त्वना दी और गद्-गद् कंठसे विदा ग्रहण कर लंकाके लिये प्रस्थान किया।

हरिबल अकेला था। केवल सत्यही उसके साथ था। वह निःसंगीकी भाँति अनेक ग्राम, नगर, देश, नदीनाले, पर्वत और अरण्योंको पार कर समुद्रके तट पर आ पहुँचा। अब तक तो उसे किसी कठिनाईका सामना न करना पड़ा था, परन्तु अब अनन्त और भयावने महासागरको सम्मुख देखकर वह चिन्तित हो उठा। न वहाँ पर कोई नौकाही थी, न समुद्र पार करनेका कोई और साधन ही था। परन्तु उसे उस पार पहुँचना बड़ा जरूरी था। इसीलिये चिन्ताके कारण वह व्याकुल हो उठा।

मनुष्यको और किसी समय अपने सहायकोंकी याद आये या न आये, परन्तु विपत्तिकालमें अवश्य आती है। हरिबल को जब और कोई सहारा न रहा और उसके जीवन मरणका प्रश्न उपस्थित हुआ, तब वह देवताओंका स्मरण करने लगा। वह अपने मनमें कहने लगा—जिस देवताने मुझे इस दरज्जेको पहुँचाया है—मेरी हिंसा वृत्ति छुड़ाकर रंकसे राय बनाया है—वही मुझे इस समय भी सहाय करेंगे।

इस प्रकार नाना प्रकारके तर्क वितर्क और चिंता करते-करते जब बहुतसा समय बीत गया और हरिबलको कोई उपाय न सूझ पड़ा, तब वह समुद्रमें कूद पड़नेको तैयार हुआ। वह कहने लगा, कि इस समय कायरताका काम नहीं है। मैं प्रतिज्ञा बद्ध हो चुका हूँ, इसलिये काम पूरा किये बिना लौट जाने और हँसी करानेकी अपेक्षा तो समुद्रकी अगाध जलराशिमें डूब मरना ही अधिक अच्छा है। जब एक बार मरना ही है, तब बदनामीका टोकरा शिर पर लेकर क्यों मरा जाय? इस समय तो "कार्यं साधयामि वा देहं पातयामि"—या तो काम पूरा करना या मरना—इसी सिद्धान्तके अनुसार कार्य करना चाहिये।

यह सोचकर ज्योंही हरिबल समुद्रमें कूदने चला, त्योंही अपने वरदानके कारण समुद्राधिष्ठित देवने आकर उसका हाथ पकड़ लिया। उसने हरिबलको प्रणाम कर कहा—मैंने तुम्हें यह वचन दिया था, कि विपत्तिके समय मैं तुम्हें सहायता करूँगा, इस लिये मैं उपस्थित हुआ हूँ। कहिये, मुझे क्या आज्ञा है?

देवताकी यह बात सुन हरिवलको बड़ा आनन्द हुआ। उसने देवतासे कहा—आप कृपा कर मुझे किसी तरह लंका पहुँचा दीजिये। इसी लिये मैं अपना प्राण देने जा रहा था।

हरिके समान हरिवलकी यह बात सुनते ही काली नागके समान उस देवताने एक दीर्घाकार मत्स्यका रूप धारण कर, हरिवलको अपनी पीठ पर बैठा लिया और वायुयानकी तरह द्रुत गतिसे समुद्र पार कर देखते-ही-देखते उसे लंकाके एक उद्यानमें पहुँचा दिया।

हरिवलने विद्याधरका वन, तरह तरहके फल और फूलोंके वृक्ष एवं प्राकृतिक सौन्दर्य देखते हुए सुवर्णमयी लंकापुरीमें प्रवेश किया। लंका पुरी वहुत ही मनोहर नगरी थी। हरिवल ज्यों-ज्यों उसकी शोभा देखता था, त्यों-त्यों उसे अधिकाधिक देखनेकी लालसा बढ़ती जाती थी। देखते-देखते वह एक निर्जन सुवर्ण मन्दिरके पास जा पहुँचा। उस मन्दिरकी शोभा अवर्णनीय थी। उसमें स्थान-स्थान पर सोने चाँदी और रत्नोंके ढेर लगे हुए थे। कहीं मेरुके समान सोनेका ढेर लगा हुआ था, कहीं अन्नकी तरह मोतियोंकी राशि लगी हुई थी, कहीं वेरकी तरह लाल माणिक, कहीं हरे बाँसकी तरह नील रत्न, कहीं काँचकी तरह हीरे और कहीं कंकड़ पत्थरकी तरह नाना प्रकारके रत्नोंका ढेर लगा हुआ था। मलयागिरिका चन्दन तो इतने अधिक परिमाणमें रक्खा हुआ था, कि उसकी लपटोंसे समूचा महल सुगन्धित हो रहा था। दूसरी ओर नाना

प्रकारके ऊनी, सूती और रेशमी वस्त्रोंके अम्बार लगे हुए थे। महलमें छोटे बड़े जितने पात्र थे, वह सभी सोनेके थे। इसके अतिरिक्त वहाँ जितनी सामग्री थी, वह सभी बहु मूल्य रत्न जड़ित और कारीगरीके उत्तम नमूनेको प्रस्तुत करने वाली थी। शैय्या और आसन आदिका भी यही हाल था। हरिबल यह सब देख कर चकित और स्तम्भित हो गया।

हरिबलके चकित और स्तम्भित होनेका एक कारण यह भी था, कि उस महलमें इतनी धन राशि होने पर भी उसमें कहीं मनुष्यका नाम निशान भी दिखायी न देता था। समूचा महल सूना और निर्जन मालूम होता था। हरिबलको कुछ समझ न पड़ा। उसे यह रहस्य जाननेकी उत्कण्ठा हुई, फलतः उसने उस मकानमें प्रवेश किया, परन्तु एकके बाद एक करके उस मकानके सब कमरे वह घूम आया, किन्तु उसे कहीं कोई मनुष्य न दिखायी दिया। अन्तमें उसने देखा कि एक कमरेमें मुरझाये हुए कमलकी भाँति एक परम रूपवती नवयौवना कन्या अचेतना वस्थामें पड़ी हुई है। उसे देखकर हरिबल सोचने लगा, कि जो मकान इस तरह समृद्धिसे परिपूर्ण है, उसमें कोई मनुष्य क्यों नहीं है और जो है वह इस तरह अचेतन क्यों है?

इतनेहीमें हरिबलकी दृष्टि सम्मुख रक्खे हुए एक अमृत पात्र पर जा पड़ी। हरिबलने उस पात्रसे थोड़ासा अमृत लेकर उस कन्याके समूचे शरीर पर छिड़क दिया। छिड़कते ही जिस तरह कोई नींदसे उठ बैठे, उसी तरह वह कन्या अलसाती हुई

जिस तरह कोई नींदसे उठ बैठे, उसी तरह वह कन्या अलसाती हुई उठ बैठी। (पृष्ठ २८)

उठ बैठी। जब उसकी दृष्टि हरिबल पर पड़ी, तब उसने बड़े प्रेमसे उसे प्रणाम कर विनम्र शब्दों में कहा—हे पुरुषोत्तम! तुमने मुझ पर जो उपकार किया है, वही तुम्हारे सौजन्यका परिचय देनेके लिये पर्याप्त है और केवल उसीसे मैंने समझ लिया कि तुम कोई उत्तम पुरुष हो। फिर भी मैं तुम्हारा प्रकृत परिचय प्राप्त करनेके लिये लालायित हो रही हूँ। तुम कौन हो? कहाँ रहते हो और यहाँ क्यों आये हो?—यह सब बातें तुम्हारे मुँहसे सुनकर मुझे बड़ा आनन्द होगा।

हरिबलने कहा—मैं विशाला नगरीके मदन वेग राजाका सेवक हूँ। मेरा नाम हरिबल है। राजा मुझ पर बड़ा स्नेह रखते हैं। उनके यहाँ शीघ्रही एक महोत्सव होने वाला है, इस लिये उन्होंने मुझे राजा विभीषणको निमन्त्रण देनेके लिये यहाँ भेजा है। मैं विशाल नगरीसे समुद्र तट तक तो निर्विघ्न रूपसे आ पहुँचा, परन्तु समुद्र पार करना मेरी शक्तिके बाहरका काम था। किन्तु अहिंसा धर्मके प्रभावसे एक देवता मुझे सहाय हुआ और वह मत्स्यका रूप धारण कर मुझे यहाँ-तक पहुँचा गया। यही मेरा संक्षिप्त परिचय है। अब तुम अपना परिचय दो, क्योंकि तुम्हारी ही तरह मैं भी उसके लिये लालायित हो रहा हूँ।

यह सुनकर कन्याने अपना परिचय देते हुए कहा—मैं राजा विभीषणके पुष्पबटुक नामक मालीकी कन्या हूँ। मेरा नाम कुसुमश्री है। मेरा पिता बड़ा मूर्ख है। एक बार उसने

मेरा सौन्दर्य देखकर एक ज्योतिषीसे पूछा, कि इस कन्याको कैसा पति मिलेगा? ज्योतिषीने मेरी जन्म पत्री और हस्तरेखा आदि देखकर कहा, कि इस कन्याका जिसके साथ विवाह होगा वह अवश्य राजा होगा। ज्योतिषीकी यह बात सुन मेरे पिताके जीमें लोभ समाया और वह अपने मनमें सोचने लगा, कि यदि मैं ही इसके साथ विवाह कर लूँ, तो मैं ही राजा हो सकता हूँ। यह सोचकर जब वह मेरे साथ विवाह करनेको प्रस्तुत हुआ, तब मेरी माता और स्वजन-परिजन बड़े क्रुद्ध हुए और उन्होंने उसका त्याग कर दिया। तबसे वह मुझे लेकर इस मकानमें अलग रहता है और मुझे नाना प्रकारके कष्ट दिया करता है। वह बड़ा मायावी है, इसलिये जब किसी कार्यवश बाहर जाता है, तब मुझे मृतककी भाँति चेतना रहित कर जाता है और जब वापस आता है, तब इसी पात्रका अमृत छिड़क कर मुझे जीवित करता है। मैं अपने इस दुःख मय जीवनसे ऊब गयी हूँ और इस जीवनसे मृत्युको अधिक पसन्द करती हूँ।

उस कन्याने इस प्रकार आत्म-परिचय देनेके बाद हरिवलसे प्रार्थना की, कि तुम मुझे वाञ्छित फल देनेवाले कल्पवृक्षके समान हो, और यहाँ मेरे पूर्व पुण्यके उदयसे आ पहुँचे हो तो अब मेरा पाणि-ग्रहण कर अपना और मेरा जीवन सार्थक करो। मैं तन-मन से तुम पर अनुरक्त हो रही हूँ। इस समय विवाह का मुहूर्त भी बहुत अच्छा है, इस लिये अब विलम्ब न करो।

यदि कहीं मेरा पिता आ जायगा, तो व्यर्थ ही रंगमें भंग होगा और हम लोग विपत्तिमें आ पड़ेंगे।

कुसुमश्रीकी यह बात सुनकर हरिबल अपने मनमें कहने लगा, कि यह सब उसी एक मत्स्यको बचानेका फल है। यदि ऐसा न होता तो यह रूपराशि लावण्यमयी सुन्दरी विद्याधरोंको छोड़ कर मेरे साथ विवाह करनेको तैयार न होती। यह मेरा अहो भाग्य है, जो यह मेरे साथ परिणय-सूत्रमें आबद्ध होना चाहती है। निःसन्देह मुझ पर देवताओंका बड़ा अनुग्रह है।

यह सोचकर हरिबलने कुसुमश्रीके कथनानुसार उसी समय उसके साथ विवाह कर लिया। विवाह हो जाने पर कुसुमश्रीने कहा—प्राणनाथ! यदि अब हमें अपने जीवनका मोह हो, तो इसी समय यह स्थान छोड़ देना चाहिये ; क्योंकि यह बात मेरे पिताको मालूम होते ही वह प्रलय उपस्थित कर देगा, इस लिये यहाँ एक क्षणभर भी रहना उचित नहीं है। विभीषणको निमन्त्रण देना न देना बराबर है; क्योंकि विद्याधरोंके इन्द्रकी भाँति वे भी अपना स्थान छोड़ कर कहीं नहीं जाते। तुम्हारा यहाँ तकका आना ही उन्हें निमन्त्रित करनेके तुल्य है।

हरिबलने कहा—सुन्दरी! तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है, परन्तु घर पहुँचने पर विशालापति जब पूछेंगे, कि लंका जानेका क्या प्रमाण है, तब मैं क्या कहूँगा?

कुसुमश्रीने यह सुनकर चन्द्रहास नामक एक खड्ग लाकर हरिबलके हाथमें रक्खा और कहा, कि यह राजा विभीषणका

प्रसिद्ध खड्ग है। यदि कोई तुम्हारे यहाँतक आनेके सम्बन्धमें सन्देह करे, तो तुम उसे यह खड्ग दिखा कर अपनी सत्यताका प्रमाण दे सकोगे। बस, चलो अब हम लोग यहाँसे भाग चलें।

हरिबलने कुसुमश्रीकी बात मानली। उसने तुरन्त समुद्राधिष्ठित देवताको स्मरण किया। स्मरण करनेके साथही देवता आ उपस्थित हुए। हरिबलने उनसे ज्योंही अपना इरादा कह सुनाया, त्योंही उन्होंने एक वृषभका रूप धारण कर हरिबल और कुसुमश्रीको अपनी पीठ पर बैठा कर रास्ता तय करने लगे। हरिबलने चलते समय उस मकानकी बहुतसी बहु मूल्य चीजें और वह अमृतपात्र भी अपने साथ ले लिया। जिस समय वे पति-पत्नी वृषभारूढ हो बाहर निकले, उस समय मालूम हुआ, मनो साक्षात् शिव और पार्वती नन्दी पर आरूढ हो कैलाशकी शोभा देखने बाहर निकले हैं।

इस तरह हरिबल और उसकी नवविवाहिता वधूको समुद्राधिष्ठित देवता अपनी पीठ पर बैठा कर, वन उपवन और नगरोंकी शोभा दिखाते हुए विशाला पुरी तक पहुचा गये। अब हम इन लोगोंको यहीं छोड़ कर हरिबलकी अनुपस्थितिमें उसकी प्रिय पत्नी वसन्तश्री पर क्या गुजरी, इसका वर्णन करेंगे।

राजा मदनवेग और वसन्तश्री

ज्यों ही हरिबलने लंकाके लिये प्रस्थान किया, त्योंही राजा मदनवेग वसन्तश्रीको वश करनेके लिये नाना प्रकारके उपाय करने लगा। आरंभमें वह नित्य अपने दास-दासियों द्वारा उसका कुशल समाचार पूछता और तरह तरहकी चीजें उसके यहाँ बतौर उपहारके भेजता। जब वह चीजें लेकर दास-दासियाँ वसन्तश्रीके पास जातीं और वसन्तश्री उन चीजोंके लानेका कारण पूछती, तब वे राजाके आदेशानुसार कहतीं—हे भद्रे! तुम्हारे पति राजाके बड़े कृपा पात्र और परम मित्र थे। राजाने उन्हें अपने कामके लिये बाहर भेजा है, इस लिये उनकी अनुपस्थितिमें हरतरहसे तुम्हें आराम देना वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

वसन्तश्री तो यह पहले ही जान गयी थी, कि राजाका दिल साफ नहीं है, इसी लिये वह यह सब चीजें भेजता है और मुझे प्रलोभन दिखाकर वश करना चाहता है। फिरभी वह वे सब चीजें प्रसन्नता पूर्वक अपने घरमें रख लेती और मुस्कुरा कर दासियोंसे कहती, कि राजाजीकी हमलोगों पर बड़ी कृपा है,

और वह मेरी खोज-खबर रखते हैं, इसके लिये हम लोग उनके चिरऋणी रहेंगे।

इस तरह उपहार भेजते और कुशल समाचार पूछते पूछते बहुत दिन बीत गये। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता था, त्यों-त्यों राजाकी कामाग्नि अधिकाधिक धधकति जाती थी। अन्तमें एक दिन उसने कामान्ध हो एक दासी द्वारा स्पष्ट कहला भेजा, कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ और इसीलिये मैंने हरियलको लंका भेजा दिया है। अब वहाँसे उसके लौटनेकी कोई संभावना नहीं है, इस लिये उसकी आशा छोड़ कर अब तुम मुझे ही अपना उपास्यदेव और मुझेही अपना जीवन सर्वस्व समझो।

दूती द्वारा यह बातें सुन वसन्तश्रीके शरीरमें मानो आगसी लग गयी; परन्तु वह जानती थी, कि मुझे अभी विपत्तिका दुस्तर समुद्र पार करना है, इस लिये उसने कोई उत्तर न दिया। दूतीने जब यह हाल राजासे जाकर कहा, तब राजाने समझा कि "मौनं सम्मति लक्षणम्" अर्थात् उसका निरुत्तर रहना उसकी सम्मतिका द्योतक है। निदान वह रात्रिके समय हरियलके घर गया। वहाँ वसन्तश्रीको देखकर उसे बड़ा आनन्द हुआ। वसन्तश्रीने भी अपने मनका विषाद छिपा कर राजाको सम्मान-पूर्वक एक उच्च आसन पर बैठाया और कहा कि आपके आगमनसे मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ है। कहिये, अब आपकी क्या आज्ञा है?

वसन्तश्रीकी यह मीठी-मीठी बातें सुनकर राजाको बड़ा

हर्ष हुआ। उसे यह न मालूम था, कि सती स्त्रियाँ भी अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये असतीका सा आचरण करती हैं। वसन्तश्री भी इस समय ऐसा ही कर रही थी; परन्तु राजा अपनी अज्ञानताके कारण इसे समझ न सका। उसने कहा—हे वसन्तश्री, मैं तुम्हें अपने महलमें ले चलनेके लिये आया हूँ, इस लिये शीघ्र ही तुम मेरे साथ चलो। जिस तरह सिन्दूर बिन्दुके विना सधवाका ललाट शोभा नहीं देता, उसी तरह विना तुम्हारे मेरा महल सूना और श्री हीन मालूम होता है।

राजाकी यह बात सुन, वसन्तश्रीने उसे समझाते हुए कहा—राजन्! निःसन्देह आपका कथन बहुतही प्रिय और परम हितकर है; परन्तु आप मेरे पतिके मित्र और मेरे संरक्षक होकर ऐसी बात कह रहे हैं, यह ठीक नहीं। आकाशमें जब तक सूर्य रहता है, तब तक कोई चन्द्रमाका भाव नहीं पूछता—यह तो आप जानते ही होंगे।

राजाने कहा—तुम क्या कहना चाहती हो सो मैं समझ गया; किन्तु तुम्हें यह बात बतलानेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है, कि मैंने तुम्हारे पतिका प्राण लेनेके लियेही उसे लंका भेजा है, वह वहाँसे अब जीता नहीं लौट सकता और यदि प्रतिज्ञा भंगकर लौट आयेगा, तो मैं उसे जीता न छोडूँगा। इस लिये अब उसकी आशा छोड़कर तुम मेरे साथ चलो और ऐश्वर्य भोग करो। मैं जिस दिन तुम्हारे यहाँ भोजन करने आया था, उसी दिनसे तुम्हारे रूप-सौन्दर्य शील, स्वभाव और

गुणों पर मुग्ध हो रहा हूँ। तुम्हारे मिलनकी अभिलाषाने मेरे समूचे शरीरमें आग सी लगा रक्खी है।

मेरे अंग प्रत्यंगमें वेदना और जलन होती है। मुँह सूख जाता है और रात-दिन चित्त उदास रहता है। मुझे किसीसे बोलना चालना या किसी तरहकी क्रीड़ा करना रुचिकर नहीं प्रतीत होता। मेरी बुद्धि मन्द हो गयी है और चित्त निरुत्साह हो गया है। रात्रिके समय मुझे अच्छी तरह नींद भी नहीं आती। मैं अपने महलमें या बाहर वन उपवनमें जहाँ रहता हूँ, वहाँ तुम्हारी ही मनोहर मूर्ति मेरे मन-मन्दिरमें अधिकार जमाये रहती है। जब मैं सोता हूँ, तब स्वप्नमें भी तुम्हीको देखता हूँ और अनेक बार तुम्हारा नाम लेता हुआ चौंक कर उठ बैठता हूँ। इस प्रकार हे वल्लभे! मैं तुम्हारे पीछे पागल हो रहा हूँ। महलमें रानियाँ मेरा उपहास करती हैं और उनके आगे मुझे लज्जित होना पड़ता है; परन्तु मैं अच्छी तरह जानता हूँ, कि मेरी इस दुरवस्थाका कारण एक मात्र तुम्हीं हो। चलो, अब विलम्ब न करो। अपने मधुर वचन और आलिङ्गन द्वारा मेरे हृदयकी धधकती हुई अग्नि-ज्वालाको शान्त करो। मैं इस समय एक रोगी हूँ और तुम वैद्य हो। मुझे मारना या जिलाना तुम्हारे अधिकारकी बात है।

हे कमल वदनी! मेरा और तुम्हारा भाग्योदय अब तुम्हारे ही हाथमें है। यह मेरा समूचा राज्य तुम पर निछावर करनेको तैयार हूँ। मैं अपने सब दिव्य भवन, वस्त्राभूषण,

हाथी, घोड़े और सभी सुख तथा ऐश्वर्य तुम्हारे चरणों पर चढ़ा रहा हूं। मेरे मन्त्री आदि उच्च पदाधिकारी, दास-दासी और सभी नौकर चाकर तुम्हारी सेवा करेंगे। तुम्हें मैं आजही से अपनी पटरानी बनाऊंगा। तुम पानी मांगोगी, तो तुम्हें दूध मिलेगा। यह न समझना, कि आज मैं तुम पर अनुरक्त हूँ, इसलिये ऐसा कह रहा हूं। मैं तुम्हें वचन देता हूं, कि जब तक इस संसारमें जीवित रहूँगा, तब तक मैं स्वप्नमें भी तुमसे जुदाई न रक्खूंगा। तुम भी मुझे वचन दो कि आजसे मैं तुम्हारी हुई। बस, मैं और कुछ नहीं चाहता।

यह कह कर मदनवेगने वसन्तश्रीकी ओर वचन लेनेके लिये हाथ बढ़ाया। वसन्तश्री मानो चौंक पड़ी और दो हाथ पीछे हट गयी। उसके चेहरे पर विषादकी रेखायें झलक मारने लगीं। राजाने उसकी ओर देखा। उसे मालूम हो गया कि वह वचन देना नहीं चाहती, अपनी याचना इस तरह निष्फल हुई देखकर वह कुछ झेंप सा गया। परन्तु दूसरे ही क्षण उसका चेहरा क्रोधसे तमतमा उठा।

उधर वसन्तश्रीकी अवस्था शिकारीके हाथमें पड़ी हुई हरिणी की तरह शोचनीय हो पड़ी। उसे चारों ओर निराशाही निराशा दिखायी देने लगी। उसे मालूम हुआ कि मानो मेरे शिर पर विपत्तिके बादल मँड़रा रहे हैं और मेरे सतीत्व पर वज्रपात होने चाहता है। अपनेको इस असहाया अवस्थामें देखकर वसन्तश्रीकी आँखोंमें जल भर आया और वह अपने

पतिका स्मरण कर रोने लगी। वह कहने लगी—हे प्राणनाथ! मैंने पहले ही कहा था, कि राजाका दिल साफ नहीं है और वह तुम्हारा प्राण लेनेके लिये ही तुम्हें लंका भेज रहा है, परन्तु तुमने मेरी बात न मानी। मुझे नहीं मालूम, कि तुम्हारा क्या हाल है और तुम्हें किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ रहा है; परन्तु देखो! मैं विपत्ति-जालमें बुरी तरह फँस गयी हूँ। हे नाथ! इस समय तुम कहाँ हो?

फिर वह राजाकी ओर देखकर कहने लगी—हे दुष्ट! तुझे मुझ पर अत्याचार करते लज्जा नहीं आती? धिक्कार है तुझे और धिक्कार है तेरे ऐश्वर्यको! वह मेरे किस कामका है? मैं तेरी पटरानी नहीं होना चाहती। मुझे तेरे वस्त्राभूषण और रत्नादि क्या करने हैं? मुझे ऐसे क्षण-भंगुर धनका किञ्चित भी लोभ नहीं है। मेरा सतीत्व सुरक्षित रहे—यही मेरी एक मात्र इच्छा है। हे पापी! मैं अब तेरी बात भी सुनना नहीं चाहती। तू जैसे आया था वैसे ही चुप चाप अपना रास्ता ले। मैं भी क्षत्रियाणी हूँ। स्वप्नमें भी मुझे ऐसा अपमान सह्य नहीं हो सकता, परन्तु क्या करूँ? मैं जीवहिंसासे डरती हूँ, नहीं तो इसी समय तुझे इस अपमानका मजा चखाती।"

वसन्तश्रीकी यह बात सुनते ही राजाने भौंहे चढ़ाकर कहा—यदि तुझ जैसी अबलाओंसे हम लोग डरने लगें तो एक दिन भी राज चलाना कठिन हो जाय। ज्यों-ज्यों मैं मीठे वचन कहता हूँ, त्यों-त्यों आँखे दिखाती है! बोल अब

क्या कहती है? मेरी बात स्वीकार है या नहीं? तेरा पति तो न जाने कहाँ भटक-भटक कर मर मिटा होगा। मैं नहीं समझ सकता कि ऐसी अवस्था में तू नाहीं क्यों कह रही है। जब तू अपनेको असहाय समझती है, तब तुझे मेरे साथ चलनेमें क्या आपत्ति है? मुझ जैसा पृथ्वी-पति जब तुझे अपने मन-मन्दिरके सर्वोच्च सिंहासन पर बैठानेके लिये प्रस्तुत है, तब तू व्यर्थ ही आँसू क्यों बहाती है?

वसन्तश्रीने राजाकी इन बातोंका कोई उत्तर न दिया। वह ज्यों-की-त्यों जड़ प्रतिमाकी भाँति खड़ी-खड़ी कुछ सोच रही थी। राजाने उसे विचारमें पड़ी हुई देखकर कहा—प्रिये! क्या सोच रही हो? चलो, अब विलम्ब करनेका समय नहीं है। द्वार पर रथ खड़ा है। तुम जैसे चलोगी, वैसे मैं तुम्हें ले चलूँगा। तुम्हारी इच्छा हो तो राजी खुशीसे चलो और तुम्हारी इच्छा हो तो बल पूर्वक ले चलूँ? क्या तुम्हें नहीं मालूम कि मैं इस नगरका राजा हूँ। मैं जो चाहूँ वह कर सकता हूँ। मैंने यदि तुम्हारे पतिको इस तरह बाहर भेज कर, यहीं उसका शिर उड़ा दिया होता और तुम्हें बल पूर्वक अपने महलमें रख लिया होता, तो कोई मेरा क्या कर लेता? परन्तु मैंने ऐसा करना उचित न समझा। मुझे तो तुम्हारी ही खुशीसे खुशी है। हे सुन्दरी! तुम्हें मेरे साथ चलनेमें कौन आपत्ति है? क्या मैं रूप रंग या शारीरिक शक्तियें तुम्हारे पतिसे कुछ कम हूँ? जरा मेरे महल तक चलो, फिर तुम्हें मेरे

यहाँकी विशेषतायें मालूम होंगीं। वसन्त ऋतुमें तुम सी वसन्तश्री तो मदनवेगके महल ही में होनी चाहिये। विधाताने तुम्हें मेरे बदले हरिबल जैसा पति दिया—यह निःसन्देह उसकी भयानक भूल है। मालूम होता है कि उसकी मति भ्रष्ट हो गयी है। यदि ऐसा न होता तो हरिबल जैसे दरिद्रीको वसन्तश्री जैसा रत्न क्यों देता? योग तो मणि और कञ्चनहीका होना चाहिये। लोहे और मणिका योग शोभा नहीं पाता। विधाताकी यह भयंकर भूल है। यदि कोई कारीगर अज्ञानताके कारण लोहेमें मणिको जड़ दे, तो क्या चतुर पुरुषको उसे वहाँसे निकालकर उचित स्थानमें न रखना चाहिये?

सती स्त्री सब कुछ सह सकती है, परन्तु पति-निन्दा नहीं सह सकती। राजाको पतिदेवकी निन्दा करते देख वसन्तश्रीने तीक्ष्ण दृष्टिसे उसकी ओर देखा। उसका चेहरा तमतमा उठा। नेत्रोंसे मानो चिनगारियाँ झरने लगीं। उसने गरज कर कहा—राजन् अब और चाहे जो कहो, मैं कुछ न कहूँगी; पर मैं आपसे स्पष्ट शब्दोंमें कहती हूँ, कि मेरे पतिदेवकी मेरे सम्मुख आप निन्दा न करें। वे चाहे सुरूप हो या कुरूप हों, चाहे गुणवान हों या मूर्ख हों, चाहे धनवान हों या दरिद्री हों, पर वे मेरे जीवन-सर्वस्व हैं। दूसरा कोई चाहे जैसा बुद्धिमान, चाहे जैसा धनी और चाहे जैसा गुणवान हो, मेरे लिये कुछ नहीं है।

राजाने कहा—मैं स्वीकार करता हूँ कि वही तेरे जीवन

सर्वस्व हैं; परन्तु हे चन्द्रमुखी! अब वे इस संसारमें नहीं हैं। जिस वस्तुका मिलना असम्भव है, उस पर मोह रखनेसे क्या लाभ? बुद्धिमान मनुष्य पिछली बातोंके लिये सोच नहीं करता और भविष्यमें जो अवसर मिलता है उसे हाथसे नहीं जाने देता। इस लिये यह सब दुनियादारीकी बातें छोड़ कर अब तुम मेरे साथ चलो। इसीमें तुम्हारा कल्याण है। यदि तुम मेरी बात न मानोंगी, तो मैं इसी समय अपने अनुचरों द्वारा तुम्हें बलपूर्वक अपने शयन-गृहमें उठवा ले जाऊँगा। वहाँ तुम्हारा कोई नहीं है। तुम्हें अन्तमें मेरी अधीनता स्वीकार करनी ही होगी, इस लिये अभीसे अपना हिता-हित सोचकर जो अच्छा लगे वह मार्ग ग्रहण करो।

वसन्तश्री बड़े असमंजसमें पड़ गयी। एक ओर उसे पतिद्विवकी चिन्ता हो रही थी और दूसरी ओर मदनवेग अत्याचार करने पर तुला हुआ था। वसन्तश्रीने सोच विचार कर निश्चय किया, कि चाहे प्राण भलेही चला जाय; पर मैं राजाकी अधीनता स्वीकार न करूँगी। साथही उसने यह भी स्थिर किया, कि जब तक कोरी बातोंसे सतीत्वकी रक्षा हो सके, तब तक किसी दुष्कर उपायसे काम न लेना चाहिये। यह सोच कर उसने एक बार राजाकी ओर देखा और देखकर कुछ मुस्कुरा दिया। उसका यह मुस्कुराना राजाके लिये आशाका महासागर हो गया। उसका उन्मत्त मन उसमें डूबने उतराने लगा। उसके चेहरे पर प्रसन्नताकी रेखाय झलक

उठीं। हृदय जोरोंसे धड़कने लगा और समूचा शरीर रोमाञ्चित हो उठा। उसने अधीर होकर कहा—प्रिये ! मैं नहीं जानता था कि स्त्रियाँ इतनी हद तक हठ और दुराग्रहका अभिनय कर सकती हैं। खैर, अबभी कुछ नहीं बिगड़ा। चलो, अब हम लोग महलको चलें और अपना मानव जीवन सार्थक करें।

यह कह कर ज्योंही राजाने वसन्तश्रीका हाथ पकड़नेके लिये अपना हाथ बढ़ाया, त्योंही वसन्तश्री कुछ पीछे हट कर खड़ी हो गयी। उसने कहा—राजन्! मैं अपने लिये यह बड़े सौभाग्यकी बात समझती हूँ, जो आप जैसे पृथ्वी-पति मुझे अपने महलमें स्थान देना चाहते हैं; परन्तु आपसे मेरी नम्र प्रार्थना है कि आप अभी कुछ दिन और धैर्य धारण करें। मैं पतिदेवके जीवन-मरणका निश्चत समाचार पाये बिना आपकी बात स्वीकार नहीं कर सकती; फिरभी मैं आपको वचन देती हूँ, कि यदि आजसे एक महीनेके अन्दर पतिदेवका कोई समाचार न मिलेगा, तो मैं अवश्य आपकी बात पर विचार करूँगी।

कामान्ध राजाने सोचा, कि जब यह आपही एक महीनेमें मेरी अधीनता स्वीकार करना चाहती है, तब मुझे व्यर्थही इस समय अत्याचार क्यों करना चाहिये? एक मास तो देखते-ही-खतेमें पूरा हो जायगा। इसके पतिके लौटनेकी तो कोई सम्भावना ही नहीं है। वह अवश्य मर गया होगा, इस लिये यदि यह इतनी अवधि चाहती है, तो इसे देनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

यह सोच कर मदनवेगने सहर्ष उसकी बात मान ली और

अपना मनोरथ सिद्ध हुआ समझकर, नाना प्रकारकी कल्पनायें करता हुआ वह अपने घर गया। इधर वसन्तश्री हरिबलकी प्रतीक्षामें दिन विताने लगी। उसकी अवस्था बड़ी शोचनीय थी। मारे चिन्ताके उसे रातको नींद भी न आती थी। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते थे, त्यों-त्यों उसकी चिन्ता बढ़ती जाती थी। अन्तमें महीना भी पूरा हो चला ; परन्तु हरिबलका कोई समाचार न मिला। वसन्तश्री अब हताश हो गयी। वह कहने लगी—हाय! अब मैं क्या करूँ ? आज तीसवाँ दिन है। प्राणनाथ न आये। कल वह नरपिशाच फिर आयेगा और अपनी कामाग्निमें सतीत्वको आहुति देनेके लिये मुझे बाध्य करेगा। मैं नहीं जानती थी, कि संसारमें यौवन और रूपकी थाती-अमानत लेकर रहना भी पाप है। आज मेरा रूप और यौवनही मेरे लिये विपत्तिका कारण हो रहा है। यदि मेरे पास यह दो रत्न न होते, तो मदनवेगका चित्त मेरी ओर कदापि आकर्षित न होता ; परन्तु रूप और यौवनसेभी बढ़कर मेरा सतीत्व है। वास्तवमें वही सच्चा रत्न है। मदनवेग उसे छीन लेना चाहता है; परन्तु उसकी रक्षा करना मेरा परम कर्त्तव्य है।

थोड़ी देरतक विचार करनेके बाद फिर वसन्तश्री कहने लगी—परन्तु मैं अबला होकर सबल पुरुषके हाथसे इस रत्नकी रक्षा कैसे कर सकती हूँ ? राजसत्ताके आगे केवल बातोंसे काम नहीं चल सकता। यदि कल सवेरा होतेही मदनवेग अपने अनुचरों सहित यहाँ आ पहुँचे और मुझसे कहे कि मेरे

साथ चल, तो मैं क्या उत्तर दे सकती हूँ ? यदि मैं कहूँगी कि मैं नहीं आऊँगी, तो वह उसी समय अपने अनुचरोंको अज्ञा देगा, कि इसे मेरे महलमें पहुँचा आओ। उस अवस्थामें मैं क्या करूँगी ? सतीत्वका मूल्य तो प्राणसे भी अधिक है। यदि मेरा सतीत्व नष्ट हो जायगा, तो फिर मैं जीकर ही क्या करूँ-गी ? यदि कोई और हत्यारा अत्याचार करता हो तो राजाकी शरण ली जाय, परन्तु जब राजाही अत्याचार करे तब किससे फरियाद की जाय ? यदि रक्षकही भक्षक बन जाय, तो फिर रक्षाके लिये कहाँ जाया जाय ? हाँ, ऐसी अवस्थामें भी रक्षाका एक उपाय बचा रहता है, चारों ओर निराशाका घोर अन्धकार छा जाने पर भी एक स्थानमें आशा प्रकाश झलकता रहता है। वह स्थान है, मृत्युकी शान्ति मयी गोद ! सर्वभक्षी कालकी शोक-हर छत्र-छाया ! उसका आश्रय ग्रहण करने पर फिर किसीको निराश नहीं होना पड़ता। जो उसकी शरणमें जाता है, वह सब दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। उसने अपनी गोदमें अब तक न जाने कितने दुःखित और हताश प्राणियोंको आश्रय देकर उन्हें दुःख-मुक्त किया है ! मैं भी इस पापी संसा-रको अन्तिम नमस्कार कर मृत्युकी उसी महिमामयी गोदमें आश्रय प्राप्त करूँगी। जो सबको शान्ति प्रदान करती है, वह क्या मेरी अशान्ति दूर न करेगी ?

वसन्तश्रीकी यह बात पूरी हुई न हुई इतनेहीमें उसके अन्तः करणसे यह आवाज उठी कि आत्म-हत्या भयंकर पाप है।

वसन्तश्रीने अपना केशकलाप खोल, ज्योंही गलेमें फाँसी लगानेकी तैयारी की, त्योंही अचानक हरिबलने आकर उसका हाथ पकड़ लिया।

(पृष्ठ ४५)

वसन्तश्रीने कहा,—हाँ, मानती हूँ कि आत्म-हत्या भयंकर पाप है, परन्तु सतीत्वकी रक्षा एक ऐसा पुण्य है, जो आत्म-हत्याके समान अनेक पापोंको क्षय कर सकता है। इसी लिये भारतकी सती स्त्रियाँ अपने सतीत्व पर संकट आने पर इस उपायका अव-लम्बन करती थीं। मैं इस समय निराधार और निःसहाय हूँ। आत्म-हत्याके अतिरिक्त इस समय मैं और करही क्या सकती हूँ? जब इस लोकमें कोई आशा न हो, कोई सहारा न हो और जीवित रहना भी कठिन हो पड़े, तब परम पिताका आश्रय ग्रहण करना पाप नहीं है।"

यह कह कर वसन्तश्रीने अपना केशकलाप खोल, ज्योंही गलेमें फाँसी लगानेकी तैयारी की, त्योंही अचानक हरिवलने आकर उसका हाथ पकड़ लिया। वसन्तश्री उसे देखकर चकित हो गयी। उसने गद्‌-गद्‌ कण्ठसे कहा—कौन? प्राण नाथ? हाँ, प्राणनाथ ही तो हैं। कहिये, प्रसन्न तो रहे?

हरिवल—हाँ प्रिये, मैं प्रसन्न हूँ; पर तुम यह क्या करने जा रहीं थीं? शीघ्र कहो, तुम्हें किस कारणसे प्राण देनेकी आवश्यकता पड़ी? समझदार होकर यह नादानी?

वसन्तश्री—प्राणनाथ! नादानी कहो या बुद्धिमानी किन्तु यदि आपको आनेमें किञ्चित भी विलम्ब हुआ होता तो अब आप मुझे इस लोकमें जीती न पाते।

यह कह कर वसन्तश्रीने हरिवलको मदनवेगके आगमन और दुराग्रहका सारा हाल कह सुनाया और कहा कि आज

अवधि पूरी होती थी और कल मेरे सतीत्व पर विपत्ति आनेकी संभावना थी, इसी लिये मैं प्राण देने जा रही थी।

वसन्तश्रीकी यह करुण-कथा सुनकर हरिवलको बड़ा दुःख हुआ। उसने कहा—प्रिये! निःसन्देह मदनवेगने बड़ा नीच और घृणित कर्म किया है; परन्तु उसके साथही मैं तुम्हारी बुद्धिमत्ता, साहस और पवित्रताकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। यह तुम्हारा ही काम था, जो तुमने अनेकानेक प्रलोभनोंको ठुकरा कर अपने सतीत्वको सुरक्षित रखा। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करेगा और उस पापीको उसके पापके लिये अवश्य शिक्षा देगा।

उसके बाद पतिपत्नी दोनों एक दूसरेके सुख दुःखकी बातें पूछने लगे। हम पहलेही कह चुके हैं, कि हरिवलने लंकामें कुसुमश्रीके साथ विवाह किया था और उन दोनोंको समुद्राधिष्ठित देवता वृषभका रुप धारण कर इस नगरकी सीमा तक पहुँचा गया था। हरिवल वहीं एक उद्यानमें कुसुमश्रीको बैठा कर, अकेला घर आया था और एक स्थानमें छिपकर वसन्तश्रीकी गतिविधि देखने लगा था। जब वसन्तश्रीने आत्म-हत्याकी तैयारीकी तब उससे न रहा गया और उसने दौड़कर वसन्तश्रीका हाथ पकड़ लिया। हरिवलने घर छोड़नेसे लेकर इस तरह वापस आने तककी सब बातें वसन्तश्रीको कह सुनायीं।

वसन्तश्रीने जब सुना कि प्राणनाथ कुसुमश्रीको भी अपने

साथ लेते आये हैं, तब वह बड़े उत्साहसे हरिबलके साथ उस उद्यानमें गये और कुसुमश्रीको प्रेम पूर्वक गले लगाया। आज कलकी तरह उन दिनों सौत सौतमें लड़ाई झगड़ा न होता था। इस समय तो दुर्भाग्यवश जिसके दो ब्याह हो जाते हैं, उसकी जान आफतमें पड़ जाती है। प्राचीन कालकी स्त्रियाँ अपनी सौतके साथ एक सखी की तरह —बल्कि यों कहना चाहिये कि बहिनकी तरह बर्त्ताव करती थीं। एक पुरुषके जितनी स्त्रियाँ होती थीं, वे सब समान भावसे अपने पतिकी सेवा करती थीं। कहाँ आज कलकी कर्कशा स्त्रियाँ और कहाँ प्राचीन कालकी विदुषी नारियाँ! समयके परिवर्त्तनसे दोनोंमें ज़मीन आसमानका अन्तर पड़ गया है—अस्तु।

हरिबलने अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ सलाह कर दूसरे दिन प्रातः कालमें ही राजाके पास अपने आगमनका समाचार भेजा। मदनवेग यह समाचार सुनते ही स्तब्ध हो गया। हाथमें आये हुए शिकारको इस तरह निकल जाते देख कर वह अपने भाग्यको कोसने लगा। वायुके झकोरोंसे जिस तरह पके हुए पत्ते वृक्षसे झर जाते हैं, उसी तरह मदनवेगकी परिपक्व आशाये' मिट्टीमें मिल गयीं। जिस तरह सुनारका गला गलाया सोना कभी कभी राखमें मिल जाता है और उसकी सब मेहनत बेकार हो जाती है, उसी तरह मदनवेगकी मेहनत भी बेकार हो गयी। वर्षाकालमें वायुके वेगसे जिस तरह घनघटा इधर उधर हो जाती है, उसी तरह मदनवेगके मनोरथभी छिन्न-भिन्न

हो गये। उसका मन मलीन और चेहरा श्री हीन हो गया। परन्तु अपने मनका यह दुःख वह किससे कहे। कहनेसे अपनी ही हँसी होनेका डर था, अतः अपने इस मनोभावको छिपा कर वह कृत्रिम आनन्द प्रकट करने लगा और ऐसी बातें कहने लगा, कि जिनसे लोगोंको यही मालूम हो कि वास्तवमें हरिवलके आगमनसे उसे सीमातीत आनन्द हुआ है। उसने अपने परिजन और अनुचरोंको बुला कर कहा—आज मेरे मित्र हरिवल वापस आये हैं। यह मेरे लिये बहुतही खुशीकी बात है। इस खुशीमें महल और नगरको ध्वाजा पताकाओंसे सजाओ, हाथी घोढ़े और रथादिक तैयार करो और सभासदोंसे कहो, कि सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभुषण पहन कर दरबारमें उपस्थित हों। हम सब लोग साथ मिलकर चलेंगे और हरिवलको सम्मान पूर्वक दरबारमें लिवा लायेंगे।

राजाकी यह आज्ञा होते ही नगरमें चारों ओर बाजे बजने लगे और घर-घर मंगलचार होने लगा। मदनवेग दल-बल सहित हरिवलको मिलने गया और उसे बड़े प्रेमसे गले लगा कर राज सभामें चलनेका अनुरोध किया। हरिवलने अमृत पानी और रत्नादि देकर कुसुमश्रीको घर भेज दिया। और आप विशाला पतिके साथ उनके दरबारमें गया। दरबारमें मदनवेगने उसे एक उच्च आसन पर बैठा कर उसका कुशल समाचार पूछा।

हरिवलने अपनी यात्राका हाल सुनाते हुए कहा—राजन्! मैं

आपके पाससे विदा होनेके बाद, अनेक वन उपवन, नदी नाले और गिरि श्रेणियाँ पार कर अन्तमें समुद्र तट पर जा पहुँचा; परन्तु जब मैंने देखा कि अनन्त महासागरको उत्ताल तरंगें हिलोर ले रही हैं और समुद्रका किसी ओर अन्त ही नहीं दिखायी देता, तब मुझे बड़ी चिन्ता होने लगी और मैं एक शिलाखण्ड पर बैठ कर विचार करने लगा, कि लंका पहुँचनेके लिये क्या उपाय किया जाय।

इतनेमें एक विचित्राकृति दीर्घकाय महा भयंकर राक्षस मेरे पास आया और मुझे निगल जानेकी तैयारी करने लगा। मैं उसकी विचित्र आकृति और भयंकर मूर्त्ति देखकर अत्यन्त भयभीत हुआ और उससे विनय अनुनयकर कहने लगा—हे महाबल! मुझे खा जानेसे तुम्हे तृप्ति मिलेगी, यह जानकर मैं बड़ा आनन्दित हो रहा हूँ। मुझे अपने जीवन पर मोह नहीं है। किन्तु सोच केवल यही है कि मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न हो सकेगी और मैं बीच ही में मर जाऊँगा।

यह सुनकर उस क्षुधाकुल राक्षसने क्रुद्ध होकर कहा—हे मनुष्य! तूने ऐसी कौनसी प्रतिज्ञा की है, जो मरते समय भी "प्रतिज्ञा—प्रतिज्ञा" कह रहा है! तू अपनी प्रतिज्ञाका हाल मुझसे कह, मैं उसे पूर्ण करनेमें सहायता करूँगा।

राक्षसकी यह बात सुनतेही मेरे हृदयमें आशाका कुछ-कुछ सञ्चार हुआ और मैंने साहस कर कहा—हे महाभाग्य! मैं विशालापति मदनवेगका प्रिय सेवक हूँ। मदनवेग एक महो-

त्सव करना चाहते हैं, इसलिये उन्होंने मुझे लंकापति विभीषणको निमन्त्रण देने भेजा है। इसी लिये मैं लंका जा रहा हूँ। मैंने विभीषणको निमन्त्रण पहुँचानेकी प्रतिज्ञा की है, इसलिये यदि मैं यह कार्य न कर सकूँगा, तो मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग होगी।

मेरी यह बात सुनकर राक्षसने आँखें निकाल कर कहा—हे मनुष्य! यह प्रतिज्ञा पूर्ण करना सहज काम नहीं है। इस महासागरको पार करना मनुष्यकी शक्तिके परे है। फिर भी मैं तुझे एक युक्ति बतलाता हूँ। इससे तेरा और मेरा दोनोंका काम निकल सकेगा।

मैंने हाथ जोड़ कर कहा—वह युक्ति मुझे शीघ्र बताइये। मैं अपने स्वामीके लिये कठिनसे कठिन कार्य भी करनेको तैयार हूँ।

राक्षसने कहा—हे मनुष्य! यदि तुझे लंका पहुँचना हो, विभीषणको निमन्त्रण देना हो और अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी हो, तो इसी समय एक चिता तैयार कर और उसमें कूद पड़!"

राक्षसकी इस बात पर पहले तो मुझे विश्वास न हुआ और मैंने समझा कि यह भूखा है इस लिये मुझको भूनकर खानेके लिये यह युक्ति कर रहा है, परन्तु बादको मैंने सोचा कि जब मरनाही है, तब इसी तरह क्यों न मरा जाय? यदि कार्य सिद्ध हो गया तो अच्छा ही है और न हुआ तो वैसे भी मरना ही है। यह सोचकर मैंने एक बड़ी भारी चिता तैयार की और उसमें अपनेही हाथसे आग लगा कर मैं कूद पड़ा। कुछ

देरके बाद नियमानुसार अग्निने मेरे शरीरको भस्मके रूपमें परिणत कर दिया।

इसके बाद वह राक्षस उस भस्मकी पोटली बाधकर विभीषणके पास ले गया और उसे उनके सम्मुख रख, उनसे सारा हाल कह सुनाया। विभीषण मेरी स्वामि भक्ति देखकर बड़े प्रसन्न हुए और मेरी भस्म पर अमृत छिड़क कर मुझे सजीवन किया। सजीवन होने पर मैं कई दिन तक उनके यहाँ रहा और उनका आतिथ्य ग्रहण करता रहा। इस बीचमें विभीषणके साथ मेरी बहुत घनिष्टता हो गयी। विभीषणने मेरा रूप और सौजन्य देखकर अन्तमें अपनी रूपवती कन्याका मेरे साथ विवाह कर दिया, विवाहके समय दहेजमें उन्होंने मुझे बहुतसे वस्त्राभूषण, हाथी, घोड़े, सुखपाल और नाना प्रकारकी वस्तुयें प्रदान कीं। मैं अनेक दिन तक वहाँ रहा और उन वस्तुओंको उपभोग करता रहा। अन्तमें जब मैंने कहा, कि मैं अब अपने घर जाना चाहता हूँ, तब विभीषणने कहा, कि वहाँ जाकर क्या करोगे? यहाँ आनन्दसे रहो और रिद्धि-सिद्ध भोग करो। तुम्हें जितना चाहिये उतना धन मेरे खजानेसे मिलेगा और नित्य नयी-नयी नव यौवनायें तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य करनेके लिये तुम्हारी सेवामें हाथ जोड़े खड़ी रहेंगी। विशालापुरीमें क्या तुम्हें यह सब सुख मिल सकते हैं?

मैंने कहा—हे लंकेश! मैं आपकी बात नहीं मान सकता। मैं तो विशालापति मदनबेगकी आज्ञासे केवल आपको निम-

न्त्रण देने आया था। मैं उन्हें अपना मालिक समझता हूँ। विना उनकी आज्ञा प्राप्त किये मैं यहाँ स्थायी रूपसे नहीं रह सकता। मैं तो आपहीसे यह अनुरोध करनेवाला था, कि मदन-वेगके यहाँ महोत्सव है अतः आप मेरे साथ चलिये।

मेरी यह बात सुन कर विभीषणने कहा—हरिबल! इस समय मैं नहीं चल सकता। तुम मेरी कन्या सहित चाहो तो जा सकते हो। राजा मदनवेगसे कह देना, कि मैं महोत्सवके दो दिन पहले विशालापुरीमें आ जाऊँगा।

यह सुनकर मुझे बड़ा खेद हुआ और मैंने कहा कि यदि आप मेरे साथ न चलेंगे, तो मदनवेगको मैं किस प्रकार वि-श्वास दिलाऊँगा, कि मैं लंका हो आया हूँ और विभीषणको निमन्त्रण दे आया हूँ।

यह सुनकर विभीषणने मुझे अपना चन्द्रहास नामक खड्ग दिया और कहा कि यदि मदनवेगको तुम्हारी बात पर विश्वास न हो,तो उन्हें यह खड्ग दिखा देना। यह कह कर विभीषणने अपने एक अनुचरको आज्ञा दी और वह मुझे, मेरी नवविवा-हिता वधू सहित अपने कन्धे पर बैठा कर क्षणमात्रमें यहाँ पहुँचा गया। हे राजन्! यह सब मैं आपहीका पुण्य प्रताप समझता हूँ। यदि आपकी मुझ पर इतनी कृपा न होती, तो शायद मुझे यह कार्य साङ्गोपाङ्ग सम्पन्न करनेमें सफलता न मिलती।

पुण्यके प्रभावसे हरिबलकी यह कृत्रिम बातें मदनवेगने अक्षरशः सत्य मान लीं। जिसने यह हाल सुना वही मुक्तकण्ठसे

हरिवलकी प्रशंसा करने लगा। सब लोग कहने लगे, कि हरिवल परम प्रतापी पुरुष है, अन्यथा यह कठिनकार्य इस तरह कर आना कोई हँसीखेलकी बात न थी, इस प्रकार सभी लोग हरिवलकी बातोंमें आ गये ; परन्तु मदनवेगके मन्त्रीको विश्वास न हुआ। वह अपने मनमें कहने लगा। मालूम होता है कि यह कन्या और खड्ग हरिवल कहींसे कपट करके ले आया है और हम लोगोंको झूठी बातें बना कर ठग रहा है।

परन्तु अब वह हरिवलका कुछ बिगाड़ न सकता था। राजसभामें हरिवलको सम्मान और सुयश मिलते देखकर उसकी ईर्षाग्नि दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही थी। वह सदैव यह सोचा करता था, कि किस प्रकार हरिवलका अपमान किया जाय और किस तरह उसे नीचा दिखाया जाय। अन्तमें एक दिन उसने राजाको समझाया, कि किसी समय हरिवलके यहाँ भोजन करनेके लिये चलना चाहिये। राजाने प्रसंग देखकर हरिवलसे कहा, कि तुम नया व्याह कर आये और एक दिन हमें पक्वान्न तक न खिलाया, इससे तो पहले ही भला था, कि जब तुम्हारे एक स्त्री थी, तब तुम हमें निमन्त्रण देकर जब तब खिलाया करते थे।

राजाकी यह बात सुन कर हरिवल सारी बाजी ताड़ गया। उसकी लेश मात्रभी इच्छा न थी, कि अब राजाको फिर निमन्त्रण दिया जाय और अपने घरमें आग लगायी जाय। वह जानता था कि मदनवेगको निमन्त्रण देना और विपत्तिको

निमन्त्रण देना समान है। परन्तु जब राजाने स्वयं अपने मुँहसे यह बात कही, तब इन्कार भी कैसे किया जाय? हरिवलको विवश होकर, मदनवेगको भोजनके लिये निमन्त्रण देना ही पड़ा। यह घटना क्या घटित हुई, मानो, हरिवलकी स्त्रियोंका सतीत्व फिर कसौटी पर कसा जाने लगा।

अवलाओंका चातुर्य

निमन्त्रणके दिन निर्दिष्ट समय पर विशालापति मदनवेग प्रधान मन्त्री और परिजनों सहित भोजन करने गया। हरिवलने पहलेहीसे सब तैयारी कर रक्खी थी। उसने सबको यथोचित आसन प्रदान कर भोजनशालामें बैठाया और अपनी स्त्रियोंको परोसनेकी आज्ञा दी। पतिदेवकी आज्ञा मिलते ही बहु मूल्य वस्त्राभूषण धारण कर वसन्तश्री और कुसुमश्री, सोने और चाँदीके वर्क लगे हुए पकान्न परोसने लगीं। उनके पदार्पण करते ही वह स्थान मानो उद्भासित हो उठा, पायलोंकी रुमझुम ध्वनि और कंकणोंकी झनकारसे वह स्थान सरस शब्दमय हो गया। राजा मदनवेग चम्पक वर्णी चपल चपलाओंके सुन्दर गात्र देखकर स्तब्ध हो गया। वसन्तश्री और कुसुमश्रीकी रूप मदिराने उसके चञ्चल चित्तको उन्मत्त बना दिया। बहुत कुछ चेष्टा करने पर भी

भोजन कार्यमें उसका चित्त न लगा। मन्त्रीकी प्रपञ्च रचनाके फलस्वरुप मदनवेगके शिर पर फिर मदनका भूत सवार हो गया। उसकी छिपी हुई कामाग्नि फिर भड़क उठी। उसने निश्चय किया कि अब जैसे होगा वैसे, इन दोनोंको अपने हाथमें किये बिना न रहूँगा।

मदनवेग अपने महलमें आया। वहाँ उसके दास दासियोंने अनेक उपचारों द्वारा उसके चित्तको शान्त करनेकी चेष्टा की, परन्तु कोई फल न हुआ। मदनवेगके हृदयमें ऐसी कामाग्नि प्रदीप्त हो चुकी थी, जो उसे अब क्षण भर भी कहीं चैनसे बैठने न देती थी। उसे सोते-जागते हरवक्त हरिबलकी स्त्रियोंका ही ध्यान रहता था। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों यह अग्नि शान्त होनेकी अपेक्षा बढ़ती ही गयी, इस अग्निके कारण हरिबलका खून खौल उठा और उसके समूचे शरीरमें मनो आग लग गयी। अब सदाचार रूपी वृक्ष और उसके सुयश रूपी पुष्पकी आहुति लिये बिना यह ज्वाला शान्त होने वाली न थी। अन्तमें, जब यह व्याधि किसी प्रकार दूर होती न दिखाई दी, तब मदनवेगने अपने मन्त्रीको बुला भेजा और उससे इस सम्बन्धमें उचित सलाह माँगी।

मन्त्री तो हरिबलकी उन्नति देखकर उससे जलही रहा था, अतः राजाकी मानसिक व्याधिका हाल सुन, उसने हाथ जोड़ कर कहा,—राजन्! आपकी इस व्याधिका एकमात्र महौषध वसन्तश्री और कुसुमश्री हैं। जिस तरह हो उस तरह उन्हें अपने

अधीन करनेकी चेष्टा कीजिये। उनके अधीन होते ही आपकी यह व्याधि दूर हो जायगी। उनमें ऐसा अद्भुत गुण है, कि उनके दर्शन मात्रसे ही सब प्रकारके रोग-शोक दूर हो सकते हैं। आप शीघ्रही उन्हें प्राप्त करनेकी चेष्टा कीजिये। वे सदैव पास रखने योग्य हैं, वे मनोविकारको शान्त कर सकती हैं, हृदयको आनन्द दे सकती हैं, नेत्रोंको तृप्त कर सकती हैं। ऋद्धि सिद्धको बढ़ा सकती हैं और इहलोक तथा परलोक दोनोंमें सुख दे सकती हैं।

मन्त्रीकी यह बात सुन, मदनवेग कुछ चिन्तित हो कहने लगा हरिवल कोई साधारण मनुष्य नहीं है। वह परम प्रतापी और पुरुषार्थी पुरुष है। उसकी स्त्रियोंका हरण करना सहज काम नहीं है। इसके अतिरिक्त वह मेरा मित्र है और मेरे दुष्कर कार्य किया करता है। ऐसी अवस्थामें उसकी स्त्रियोंको मैं कैसे हस्तगत कर सकता हूँ?

मन्त्रीने कहा—राजन्! यह कोई कठिन कार्य नहीं है। उसे इसवार कहीं ऐसे स्थानमें भेज दीजिये, जहाँसे वह फिर जीता न लौट सके। बस, फिर उसकी दोनों स्त्रियोंको आप अपनी ही स्त्रियाँ समझिये। हरिवल आपकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकता। उसे आप जहाँ जानेको कहेंगे, वहाँ वह सहर्ष चला जायागा, मैं समझता हूँ, कि इस वार आप उसे यमराजको निमन्त्रण देने भेज दीजिये। उससे कहिये, कि राजकन्याका विवाह करना है, अतः यमराजको निमन्त्रण दे

आवे। इस युक्तिसे काम लेने पर सहज ही आपका मनोरथ सफल हो जायगा।

काम मनुष्यको हतबुद्धि और अन्ध बना देता है। जो इसके फेरमें पड़ जाता है, उसका विवेक नष्ट हो जाता है। उसे फिर भले बुरेका विचार नहीं रहता। मदनवेगको मन्त्रीकी यह दुष्ट मन्त्रणा पसन्द आ गयी और उसने तुरन्त ही एक परिचारक द्वारा हरिबलको बुला मँगवाया।

हरिबलके आतेही राजाने इसे कपट जालमें भली भाँति फँसानेके लिये एक सुशोभित आसन पर बैठाया और बड़े मीठे शब्दोंमें उसका सत्कार कर, मुक्तकण्ठसे उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। अपनी प्रशंसा सुन हरिबलकी आँखें लज्जा और संकोचके कारण नीची हो गयीं। जब मदनवेगने देखा, कि हरिबल पर उसके शब्दोंका पर्याप्त प्रभाव पड़ चुका है, तब उसने कहा—हरिबल! आप मेरे अनन्य मित्र हैं। मैं आपका बड़ाही अहशानमन्द हूँ। यदि आप न होते, तो विभीषणको निमन्त्रण पहुँचानेका भीषण कार्य कौन करता? इस समय भी एक ऐसा ही काम आ पड़ा है। मुझे पूर्ण आशा और विश्वास है, कि आप उसे भी पूरा करेंगे।

इस प्रकार भूमिका बाँध कर मदनवेगने हरिबलसे यमराजको निमन्त्रण पहुँचानेकी बात कही। हरिबल राजाका असल मतलब ताड़ गया; किन्तु फिर भी वह अपनी सुशीलताके कारण इन्कार न कर सका। राजाको सम्मति सूचक उत्तर दे,

वह अपने घर गया और वहाँ उसने अपनी पत्नियोंसे सारा हाल कह सुनाया, हरिबलकी स्त्रियाँ राजाके घृणित मनोभावसे भली भाँति परिचित थीं, अतः क्षण मात्रके लिये वे भी चिन्तामें पड़ गयीं। परन्तु वे दोनों वीररमणी थीं। इस प्रकार विपत्तियोंसे भयभीत होना उन्होंने नहीं सीखा था। उन्होंने धैर्य धारण कर हरिबलसे कहा—प्राणनाथ! आप निश्चिन्त रहिये, आपके पुण्य प्रतापसे आपको भी सफलता मिलेगी और हम लोगोंके सतीत्वकी भी रक्षा होगी।
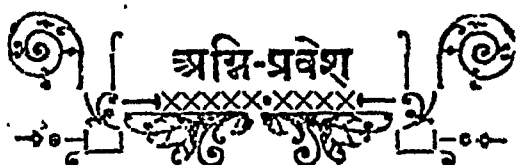
अब हरिबलको यमराजकी सेवामें किस प्रकार भेजा जाय यह एक कठिन प्रश्न हो पड़ा। अन्तमें मदनवेग और उसके मन्त्रीने मन्त्रणा कर स्थिर किया, कि नगरके बाहर एक चिता तैयार की जाय और हरिबलको उसी पर बैठाकर आग लगा दी जाय। यह बात हरिबलसे कही गयी, हरिबल जानता था कि इसमें आपत्ति करनेसे दूसरे उपाय द्वारा मेरे प्राण लेनेकी चेष्टा की जायगी, अतः उसने कोई आपत्ति न की। फलतः दूसरे ही दिन यह विचार कार्य रूपमें परिणत कर दिया गया और हरिबल सबके सामने चिता रोहण कर भस्म हो गया।

नगर निवासियोंका हरिवलपर अपूर्व प्रेम था। उन्होंने जब हरिबलकी यह गति देखी, तब वे हाहाकार कर रोने लगे और इस अन्यायके लिये राजा तथा मन्त्रीको निन्दा करने लगे। वे स्पष्ट कहने लगे, कि इन लोगोंने किसी स्वार्थ सिद्धिके कारण कपट पूर्वक हरिवलका प्राण-हरण किया है। कुछ लोग इससे भी आगे बढ़ गये और कहने लगे कि निःसन्देह राजाने हरिबलकी रूपवती ललनाओंको हस्तगत करनेके लिये ही यह पातक किया है। इस प्रकार, जैसे सड़े हुए शवसे दुर्गन्ध निकलकर चारों ओर फैलती है, वैसे ही मदनवेगकी अपकीर्ति फैलने लगी।

हरिबलने यद्यपि सबके सामने ही चिता रोहण किया था और सब लोग यही समझते थे कि वह जलकर भस्म हो गया है, परन्तु वास्तवमें हरिबलका बाल भी बाँका न हुआ था। बात यह हुई, कि मदनवेगके आदेशानुसार ज्योंही उसने चिता रोहण किया, त्योंही उसनें सुस्थित देवताको स्मरण किया और उनके सानिध्यसे, उसका जलना तो दूर रहा, उलटा जैसे अग्निमें पड़ कर सोना, कुन्दन हो जाता है, वैसेही हरिबलकी भी कान्ति दीप्त हो उठी। वह अञ्जन सिद्धिकी भाँति तत्काल चितासे निकल कर अन्तर्धान हो गया और एकान्तमें दिन व्यतीत कर रात पड़ते ही अपने घर पहुँचा। पतिदेवको आते हुए देख, उसकी दोनों स्त्रियाँ प्रेमसे उन्मत्त हो गयी। उन्हें जितना हर्ष हुआ उतनाही आश्चर्य भी हुआ। फिर भी वे अपने भाग्यको सराहने लगीं,

उन्होंने अमृतपात्रसे थोड़ा सा अमृत लेकर हरिवलके शरीर पर छिड़क दिया। इससे हरिवलका शरीर इन्द्रके समान श्रीसम्पन्न हो गया। पुण्योदयसे असम्भव भी सम्भव हो जाता है। पुण्यात्माको दुर्जन लोग दुखके समुद्रमें ढकेल देते हैं, तो वह भी उसके लिये सुख और शान्तिका आगार बन जाता है। जिस प्रकार अगरको आगमें डालने पर, किसी प्रकारकी हानि न हो कर उलटे उससे सुगन्ध फैलती है, उसी प्रकार पुण्यात्माके लिये आपदा भी सम्पदा रूप हो पड़ती है।

हरिवल अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ ज्योंही प्रेमालाप करने बैठे त्योंही कन्दर्प ज्वरसे पीडित मदोन्मत मदनवेग दूरसे आता हुआ दिखाई पड़ा। उसे देखतेही हरिवलकी स्त्रियाँ कहने लगीं-प्राण नाथ! आप कहीं घरमें छिप जाइये और देखिये आज हम किस प्रकार इसको छकाती हैं।

स्त्रियोंकी यह बात सुन हरिवल मकानमें एक ओर छिप रहे। इधर राजा मदनवेगने ज्योंही आकर दरवाजा खटखटाया, त्योंहीं हरिवलकी स्त्रियोंने किवाड़े खोल दिये और बड़े आदर सत्कारके साथ राजाको अन्दर ले जाकर एक उच्च सिंहासन पर बैठाया। वसन्तश्री और कुसुमश्रीका यह व्यवहार देखकर मदनवेग चकित हो गया और अपने मनमें कहने लगा, कि शायद यह दोनों मुझे प्रेम करती हैं। यदि ऐसा न होता, तो यह आसानीसे दरवाजा भी न खोलतीं।

समुचित शिष्टाचार प्रदर्शित करनेके बाद हरिवलकी स्त्रि-

योंने हाथ जोड़कर पूछा—राजन्! कहिये इस समय आपने हमलोगोंके यहाँ आनेका यह कष्ट क्यों उठाया? हमारे योग्य जो कार्यसेवा हो वह सानन्द सूचित कीजिये।

कुसुमश्री और वसन्तश्रीकी यह बातें सुनकर राजा उन्मत्तकी भाँति हँस पड़ा। उसे अब अपनी मनोरथ-सिद्धिमें किसी प्रकारका सन्देह न था। उसने उन दोनोंकी ओर एक विकार पूर्ण दृष्टिपात कर कहा—क्या तुम्हें नहीं मालूम, कि आज मैं तुम्हें अपने घर ले जानेके लिये आया हूँ। चलो, उठो, अब देर न करो।

राजाकी यह बात सुन दोनों स्त्रियोंने कहा—राजन्! आप यह कैसी बात मुँहसे निकाल रहे हैं। आप तो हम लोगोंके पिता तुल्य हैं। राजा—प्रजाका और स्वामी—सेवकका पिताही समझा जाता है। आपको चाहिये, कि कोई किसी प्रकारका अनर्थ या किसी पर अत्याचार करता हो, तो उसे निवारण करें, परन्तु यहाँ तो आप ही अनर्थ करने जा रहे हैं। पर स्त्री चाहे जितनी सुन्दर हो, फिर भी उसका त्याग करना चाहिये और सेवककी स्त्रीको तो पुत्री या पुत्र वधूके समान समझना चाहिये। उसे विकार पूर्ण दृष्टिसे देखना भी पाप है। राजा वही है, जो प्रजाको दण्ड देकर पाप कर्मोंसे दूर रक्खे। राजाका यही कर्त्तव्य होना चाहिये; किन्तु यदि राजा ही अत्याचार करने पर तुल जाय, तो फिर किससे फरियाद की जाय? यदि रक्षकही भक्षक बन जायँ, यदि रास्ता दिखानेवाला और संगी साथही डाकू बनकर लूट लें, यदि पानीसेंही आग

निकलने लगे और यदि सूर्यसेही अन्धकार उत्पन्न होने लगे, तो फिर उपायही क्या है? हे राजन्! आपकी अभिलाषा भी ऐसीही विपरीत है। हम लोगोंके प्राण भलेही चले जायें; परन्तु जीते जी अपना पातिव्रत नष्ट न होने देंगी। पर्वतके शिखर परसे कूद कर प्राणान्त कर देना और विषधरके मुंहमें हाथ डाल कर काल कवल वन जाना हम अच्छा समझती हैं, परन्तु पातिवृत खोकर अपना इहलोक और परलोक बिगाड़ना उचित नहीं समझतीं। इसलिये हे राजन्! आप इन गन्दे विचारोंको अपने हृदयसे निकाल दीजिये। आपकी यह दुर्वासना स्वप्नमें भी सफल न होगी। यह अन्याय मार्ग है। इस पर जो चलता है वह अवश्य नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार हरिवलकी स्त्रियोंने मदनवेगको वहुत कुछ समझाया बुझाया, परन्तु जिस प्रकार विषम ज्वरमें औषधि अपना गुण नहीं दिखाती उसी प्रकार राजाके हृदय पर उस उपदेशका कोई प्रभाव न पड़ा। बल्की इससे उसकी कामाग्नि और भी प्रदीप्त हो उठी। उसनें कहा—देखो, मैं राजा होकर तुम्हारे निकट प्रेम-भिक्षा माँग रहा हूँ। तुम्हें अब इन्कार न करना चाहिये। तुम्हारे पतिको मैंने यमपुर भेज दिया है। अब वह वहाँसे वापस नहीं आ सकता। मैं न जाने कितने दिनसे तुम दोनों पर अनुरक्त हूँ। तुम्हारे पीछे मैंने अपना जी जला जला कर ख़ाक कर दिया है। मैंने वहुत दिनोंतक धैर्य रक्खा और बहुत दिनों तक अपने आपको विरहाग्निमें जलाता रहा। अब

मैं और अधिक नहीं ठहर सकता। अब तुम मुझेही अपना स्वामी समझो। मैं ही अब तुम्हारा एकमात्र अधिकारी हूँ। तुम्हें मेरी बात माननी ही होगी। यदि तुम सीधी तरहसे न मानोगी और अपनी खुशीसे मेरे साथ न चलोगी, तो मुझे बलपूर्वक तुम्हें ले जाना पड़ेगा, इस लिये मेरा कहना स्वीकार करलो और मेरे महलमें चलकर उसे अपनी उज्वल प्रभासे उद्भासित करो। मेरा राजपाट, मेरा धन, मेरा ऐश्वर्य, मेरे दासदासियाँ और मैं स्वयं अपनेको तुमपर न्यौछावर करता हूँ।"

राजाकी यह बात सुन, हरिबलकी स्त्रियोंने क्रुद्ध होकर कहा—हे मूढ़! इतना समझाने बुझाने परभी तू फिर वही बातें करता है? क्या तुझे नहीं मालूम, कि हिन्दू रमणियाँ सतीत्वकी रक्षाके लिये अपने प्राणतक न्यौछावर कर सकती हैं? क्या तू यह समझता है, कि हमलोग तेरे राजपाट, धन, ऐश्वर्य और दासदासियोंके प्रलोभनमें पड़कर अपने पातिव्रत धर्मको जलाञ्जलि दे देंगी। धिक्कार है तेरी ऐसी समझको! यदि अब एक भी बात अपने मुँहसे निकाली, तो समझ लेना, कि खैरियत नहीं है। यह मत समझना कि हम अकेली हैं। सतियोंकी पत ईश्वर रखता है।

कुसुमश्री और वसन्तश्रीके यह कटुवचन सुनकर राजाको बड़ा क्रोध आया और उसने उन दोनों अबलाओं पर बलात्कार करनेकी तैयारी की। कुसुमश्री और वसन्तश्री इसके प्रतिकारके लिये पहलेहीसे तैयार थीं। ज्योंही उन्होंने रंग बदलते देखा,

त्योंही वे दोनों उस पर टूट पड़ीं और उसे जमीन पर गिराकर, चोरकी तरह उसके हाथ पैर कसकर बाँध दिये। जमीन पर गिरते समय आघात लगनेके कारण राजाके दाँत भी टूट गये, इससे उसे बड़ी वेदना होने लगी। उसकी आँखोंमें आँसू भर आये और वह अपमान, ग्लानि तथा पीड़ाके कारण मूर्खकी भाँति करुण क्रन्दन करने लगा। इस समय उसकी ठीक वही अवस्था थी, जो मुनाफेके लोभमें पड़कर पूञ्जी भी खो बैठने वाले लोभी मनुष्योंकी हुआ करती है।

स्त्रियाँ अबला होने परभी समय पड़नेपर-अपनी लाज या प्राण-रक्षाके लिये—सब कुछ कर सकती हैं। उस समय वे न जाने कितनी भयंकर, कितनी निर्दय, कितनी कठोर और कितनी बलवती हो जाती हैं; परन्तु वैसे-साधारण अवस्थामें—वे बहुतही विनम्र और दयालू होती हैं। एक क्षण पहले हरिवलकी जिन स्त्रियोंने मदनवेगको उसकी पाशविकताके कारण दण्डित किया था, उन्हीं स्त्रियोंका हृदय अब उसे रोते देखकर दयासे द्रवित हो उठा। कुसुमश्रीने कहा—हे पापी! यद्यपि तुझे जैसे पापीके प्रति दया दिखाना और मनुष्योचित आचरण करना—पाप है, किन्तु फिरभी हमलोगोंका दिल दयासे कातर हो रहा है। हम लोगोंसे तेरी यह अवस्था नहीं देखी जाती। इच्छा तो थी, कि तुझे इसी तरह बाँध रक्खा जाय और सवेरे तेरी फजीहत कराई जाय, फिरभी हम तुझे बन्धन मुक्त कर रही हैं। इससे तू इस लोककी यातनासे बच जायगा, परन्तु यह न समझना

वे दोनों उस पर टूट पड़ीं और उसे जमीन पर गिराकर, चोरकी तरह उसके हाथ पैर कसकर बांध दिये। पृष्ठ ६४

कि परलोककी यातनासे भी छुटकारा मिल जायगा। इस पापकर्मके कारण तू नरकका अधिकारी हो चुका है। तुझे उस दुःखसे छुड़ाना हमलोगोंके अधिकारकी बात नहीं।

इतना कह हरिबलकी स्त्रियोंने मदनवेगको बन्धन मुक्त कर दिया। मदनवेग इससे बहुत ही लज्जित हुआ। उसे अब एक शब्द बोलने या आँख उठा कर उन सती साध्वियोंकी ओर देखनेका साहस न पड़ता था। वह कुछ देर तक वहीं चुपचाप बैठा रहा और फिर पश्चाताप करता हुआ अपने महल की ओर चल पड़ा। महलमें पहुँच कर उसने किसी तरह रात काटी। न उसके तनमें तेज था, न मनमें शान्ति। सवेरा होते ही वह राजसभामें गया। टूटे हुए दाँतोंको छिपानेके लिये उसने अपना मुँह ढक रक्खा था। मन्त्रीने जब एकान्तमें इसका कारण पूछा, तब मदनवेगने उससे सारा हाल कह सुनाया, राजाकी बात सुनकर मंत्रीके हृदयमे एक साथही भय आश्चर्य और करुणाके भावोंका संचार हुआ और वह भी बोझ से लदी हुई नौकाकी भाँति चिन्ताके कारण विचार सागरमें निमग्न हो गया।

इधर हरिबल भी अपनी स्त्रियोंका विचित्र चरित्र देखकर आश्चर्यसे चकित और स्तम्भित हो रहा था। राजाके चले जाने पर उसने अपनी स्त्रियोंको गले लगाकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा, कि ऐसे अविचारी और पाशव-प्रकृतिके मनुष्योंके साथ ऐसाही व्यवहार करना चाहिये। लातोंके देवता

बातोंसे प्रसन्न नहीं होते। इसलिये मदनवेगके साथ जो व्यव-हार किया गया है, वह सर्वथा उचित ही है, परन्तु इस बातके लिये उसकी अपेक्षा उसका मन्त्री अधिक अपराधी है, इस लिये भविष्यमें अब हमें उसीको दण्ड देनेका उपाय खोज निकालना चाहिये। जिस प्रकार एक बुद्धिहीन सारथी रथको कुमार्ग पर चढ़ा ले जाता है, उसी प्रकार दुष्ट मन्त्री राजाको कुमति सिखा कर उसे चौपट कर देता है। किसीने कहा भी है, कि राजा, पुरुष, अश्व, वीणा, शस्त्र तथा शास्त्र—इनकी उत्तमता और हीनता दूसरोंही पर निर्भर करती है; अर्थात यह जैसे लोगोंके पाले पड़ते हैं, वैसेही हो जाया करते हैं। किसीने यह भी कहा है, कि बेल (लता) राजा, मन, व्यख्यान, जल और स्त्री—इन छः पदार्थोंसे जब तक नीचका संग नहीं होता, तभी तक यह उत्तम रहते हैं। ज्योंही नीचका संग हुआ, त्योंही इनका अधःपात हो जाता है। इसलिये, मेरी यह-दृढ़ धारणा है, कि राजाकी इस कुमतिके लिये उसका मन्त्रीही ज़िम्मेवार है और उसीके विनाशका हमें उपाय सोचना चाहिये। जब तक यह जीवित रहेगा, तब तक राजा हजार उपाय करने परभी सुधर न सकेगा। दुष्टोंका दमन और सज्जनोंका प्रतिपालन करना न्याय है। इसलिये ऐसे दुष्ट प्रकृतिके मन्त्रीका सर्वनाशही करना चाहिये। उसने हमलोगोंके साथ कपट व्यवहार किया है, इसलिये यदि हम भी उसे कपट द्वारा ही पराजित करें तो कुछ भी अनुचित न होगा—"शठे शाठ्यं समाचरेत्"

तदनन्तर इस सम्बन्धमें विशेष रूपसे सलाह करनेके लिये समुद्र देवताको स्मरण किया, क्योंकि ऐसी बातोंका निर्णय करते समय एक से दो और दो से तीन मनुष्य हो तो अधिक अच्छा होता है। आवश्यक सलाह हो जाने पर, समुद्र देवताने हरिवलको दैवी वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत कर देवता स्वरूप बना दिया। इसके बाद उसने एक भयंकर यमदूत बनाया। हरिवल उसे अपने साथ लेकर सवेरा होतेही राज-सभामें जा पहुँचे। इन्द्रके समान अलौकिक सुन्दर और देदिप्यमान हरिवलको राज सभामें उपस्थित देखकर, सब-लोग आश्चर्यसे चकित और स्तम्भित हो गये। मदनवेगके मनमें कुछ भयका भी सञ्चार हुआ। वह अपने मनमें कहने लगा, कि मन्त्रीके कहनेसे हरिवलको तो मैंने चितामें जलाकर भस्म कर दिया था; परन्तु न जाने वह फिर कहांसे आ पहुँचा। धिक्कार है मुझे, कि इस मन्त्रीके कहनेसे मैं बार-बार ऐसे दिव्य शक्ति-सम्पन्न पुरुषके साथ कपट व्यवहार करता हूँ।

अन्तमें मदनवेगने अपनी घबड़ाहटको छिपा कर, हरिवलका स्वागत किया और कुशल समाचार पूछनेके बाद वे किस तरह यमराजके यहाँसे वापस आये और उनके साथका वह भीमकाय पुरुष कौन था इस सम्बन्धमें कई प्रश्न पूछे। हरिव-लने कहा—हे राजान्! ज्यों ही मैं चितारोहण कर भस्म हुआ त्योंहीं यमराजके दरबारमें जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर यमरा-जके एक सेवकसे मैंने सब वृत्तान्त कह सुनाया। उसने सब

बातें यमराजको कह सुनायीं। यमराजने प्रसन्न हो उसी समय मुझे जीवन दान दे; परम रूपवान बना दिया। मुझे ज्ञात हो गया कि कष्ट और सत्य—इन दोनोंसे संसारमें मनो वाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। सत्यवादिके लिये संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

अस्तु, मैं बहुत दिनों तक यमराजके यहाँ रहा और उनका आतिथ्य ग्रहण करता रहा। जब यमराजसे घनिष्टता हो गयी, तब एक दिन वे अपने साथ मुझे अपना रत्न-भण्डार दिखाने ले गये। राजन्! मैं उस रत्न भण्डारका क्या वर्णन करूँ? अब भी उसका दृश्य मेरी आँखोंके सामने नाच रहा है; परन्तु जिह्वामें वर्णन करनेकी शक्ति नहीं है। मुझे उस समय समझ नहीं पड़ता था, कि मैं क्या देखूँ? एक चीज देखता था, तो दूसरी देखनेको रह जाती थी। दूसरी देखता था, तो तीसरी को देखना भूल जाता था। मुझे मालूम होता था, कि मानो मैं किसी भयंकर भ्रममें पड़ गया हूँ; अथवा कोई विचित्र स्वप्न देख रहा हूँ। मुझे स्वयं यमराजने अपने खजाने और संग्रह-स्थानकी अनेक चीजें दिखायीं और उनके गुण बतलाये, देख कर मैं अवाक् हो गया।

यमराजके इस रत्न-भाण्डारके अतिरिक्त मैंने वहाँ और भी अनेक चीजें देखीं। मैंने देखा कि इन्द्रपुरीको भी मात करने वाली यमराजकी संयमनी नामक नगरी है। वहाँ धर्मराजकी दुहाई फिरती है। उसमें पुण्यात्मा लोग रहते हैं। तेजसी

नामक वहाँ एक राज सभा है। उस सभामें ताम्रचूड़ नामक दण्डधर हैं। वे अपनी चारभुजाओंमें लेखन, मसिपात्र और पुस्तकादि धारण करते हैं। मैं ने यह भी देखा कि इन्द्रादिक देवता भी धर्मराजकी सेवा करते हैं और ब्रह्मा विष्णु, महेश भी उन्हें सन्तुष्ट रखनेकी सर्वदा चेष्टा किया करते हैं।

यमराजके पिताका नाम सूर्य और माताका नाम संज्ञावती है। उनके भाईका नाम शनीश्वर है। उसके आतंकसे तीनों लोकके प्राणी संत्रस्त रहते हैं और त्राहि-त्राहि किया करते हैं। यमराजके जमुना नामक एक बहिन भी है। उसका वर्ण श्याम होने परभी वह पतित पावनी होनेके कारण लोकप्रिय है। उनकी पटरानीका नाम धूपोर्णा है। वह धूम्र मुखी है और सब लोग उससे ईर्षा करते हैं। मृत्युप्राप्त लोगोंको वहन करने योग्य रथी नामक उनका वाहन है। चंड और महाचंड नामक उनके दो दास हैं। चित्रगुप्त नामक एक मुनीम हैं। वह तीनों लोकके प्राणियोंके भले बुरे कर्मोंका लेखा रखते हैं। हे राजन्! यमराजके यहाँ बहुत दिनों तक रहकर मैं ने इन सब बातोंका पता लगाया है। मैं ने देखलिया, कि यमराज जिसपर प्रसन्न हो जाते हैं, उसे निहाल कर देते हैं और जिसपर असन्तुष्ट हो जाते हैं, उसे देखते-ही-देखते पायमाल भी कर देते हैं।

सज्जन और पुण्यात्माओंके लिये वे धर्मराज हैं और पापी तथा दुरात्माओंके लिये यमराज हैं। मैं तो उनके दर्शन प्राप्तकर अपने भाग्यकी सराहना करने लगा और मन-ही-मन इस स्वर्ण-

योगका योग करानेके लिये आपको अनेकानेक धन्यवाद देने लगा ।

हे राजन् ! कुछ दिनोंके बाद मौका देखकर एक दिन मैंने यमराजको आपके निमन्त्रणकी बात कह सुनायी । यमराज उसे सुनतेही अतीव प्रसन्न हो कहने लगे—हे हरियल ! यदि राजाका मुझ पर इतना प्रेम है, तो मैं उनका निमन्त्रण स्वीकार कर कन्याके विवाह पर अवश्य आऊँगा ; परन्तु तुम जानते हो, कि राजा मदनवेगसे मेरा कोई पूर्व परिचय नहीं है । विवाहादि शुभ अवसरों पर मित्र और स्नेहियोंके यहाँ जाना यह लोकरीति और परंपरागत शिष्टाचार है । एक ओरसे जैसा शिष्टाचार किया जाता है, वैसाही दूसरी ओरसे भी कर-नेकी प्रथा है । इसलिये यदि राजा मदनवेग यह चाहते हैं, कि मैं उनका निमन्त्रण स्वीकार करूँ और उनके यहाँ विवाहके समय योगदान दूँ, तो उन्हें एक बार पहले अपने स्वजन परि-वार, पुरजन परिजन और मन्त्रियोंके सहित हमारे यहाँ आना चाहिये । ऐसा करनेसे मैं सहर्ष उनके यहाँ चल सकता हूँ ।

हे राजन् ! यमराजने मुझसे वारंवार आग्रह पूर्वक कहा है, कि एकवार राजाको परिवार एवं कर्मचारियोंके सहित हमारे यहाँ आनेको अवश्य कहें । उनका मुझ पर बड़ा ही प्रेम था और वे मुझे इतना चाहते थे, कि किसी तरह आनेही न देते थे । उन्होंने मुझे भाँति-भाँतिके वस्त्रालंकारोंसे पुरस्कृत कर, अनेक देवकन्याओंके साथ मुझे व्याहकर लेनेके लिये समझाया । मैंने जब यह अस्वीकार किया तब उन्होंने कहा कि इनमेंसे यदि एकका भी

तुम पाणिग्रहण कर लोगे, तो मैं अपनेको कृतकृत्य समझूँगा, परन्तु मैंने कहा, कि मैं अब एक भी कन्याके साथ विवाह करना नहीं चाहता। मैं तो केवल आपको अपने स्वामीकी ओरसे निमन्त्रण देने आया हूँ। हाँ, यदि इन देवकन्याओंका विवाह आप हमारे राजा और मन्त्रीके साथ कर देंगे, तो मुझे बड़ाही आनन्द होगा।

मेरी यह बात सुनकर यमराजने मुझे सम्मान पूर्वक विदा कर दिया और कहा यदि तुम्हारी यही इच्छा है, कि हमारा और राजाका मैत्री सम्बन्ध हो जाय और यह देवकन्यायें उन्हीं से ब्याह दी जायँ, तो शीघ्रही जाकर उन्हें हमारे यहाँ भेज दो। यह कह कर मुझे मार्ग दिखाने और आपलोगोंको सम्मान पूर्वक लिवा ले जानेके लिये उन्होंने यह वैद्रुत नामक अपना एक अनुचर मेरे साथ कर दिया है। इसलिये हे राजन्! अब आप विलम्ब न कीजिये। शीघ्र मण्डली सहित सबको तैयार होनेकी आज्ञा दीजिये और इस अनुचरके साथ सदलबल प्रस्थान कीजिये; क्योंकि यमराज आपकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

वैद्रुतने भी हरिबलकी इन बातोंका समर्थन किया और बड़े आग्रहसे सबको अपने साथ चलनेके लिये कहा। हरिबल और वैद्रुत दोनोंकी एक समान बातें सुनकर राजा और सभी सभाजन धोखा खा गये। वास्तवमें कपट जाल ऐसाही होता है। यदि वह निपुणता पूर्वक बिछा दिया जाता है, तो फिर शिकार फँसे बिना नहीं रहता। राजाकी कौन कहे,

उसके चंडूल मन्त्रीने भी सब बातें सच मान लीं। किसीको हरिवल या वैद्यूतकी बातों पर जरा भी सन्देह न हुआ।

हरिवलकी यह बातें समूचे शहरमें विद्युतवेगसे फैल गयीं। इससे चारों ओर कौतूहलका समुद्र उमड़ पड़ा। जिसे देखो वही राजाके साथ यमराजके यहाँ जानेकी तैयारी करने लगा। चारों ओर बड़ी चहल-पहल और धूम-धड़ाका दिखायी देने लगा। कोई कहता था, कि पहले मैं जाऊँगा और कोई कहता कि पहले मैं। सभी एक दूसरेके पहले जाना चाहते थे। राजा भी अपने दाँतोंकी वेदना भूल गया और झटपट जानेकी तैयारी करने लगा। मन्त्री तो उससे भी पहले तैयार हो गया। नगर-निवासी और सभाजनोंका भी यही हाल था। देवताके प्रभावसे सबकी मति भ्रष्ट हो गयी; किसीको देव-कन्याके साथ शादी करनेकी इच्छा हो रही थी। कोई ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त करनेका इच्छुक हो रहा था था और कोई केवल कौतूहलवश देखनेके लिये जानेको तैयार हो रहा था।

शहरके बाहर मदनवेगके आदेशानुसार एक बहुत बड़ी चिता तैयार की गयी। यमराजसे भेंट होगी या नहीं और देव-कन्यायें मिलेंगी या नहीं, यह किसीको ज्ञात न था और यह सभी जानते थे कि चितामें पड़तेही भस्म हो जायँगे, फिर भी कोई जानेसे मुँह न मोड़ता था। जिस समय मदनवेगने प्रस्थान करनेकी आज्ञा दी, उस समय उसके साथ एक बहुत बड़ा जन-समुदाय नगरसे निकलकर बाहर आया और चिता-

रोहण करनेके लिये उत्कण्ठा प्रदर्शित करने लगा । कोई मारे आनन्दके नाच रहा था, कोई गा रहा था और कोई हँस रहा था । जिसे देखो वही फूला न समाता था । मानो सबलोग मदिरा पीकर उन्मत्त हो गये हों ! विषयोंका प्रलोभन—इन्द्रिय सुखोंकी लालसा—वास्तवमें मनुष्यको ऐसाही बना देती है ।

लोगोंकी यह अवस्था देखकर हरिबलको बड़ा क्षोभ हुआ । वह अपने मनमें कहने लगा कि यह बड़ा भारी अनर्थ हो रहा है । यदि यह सब लोग अग्निमें पड़कर अपना प्राण दे देंगे, तो मुझे कहीं नरकमें भी स्थान न मिलेगा । मुझे व्यर्थही इन निरपराध व्यक्तियोंके प्राण न लेने चाहिये । दण्ड केवल उसीको देना उचित है, जिसने अपराध किया हो । जो उचित अनुचित, न्याय अन्याय, और अपराधी निरपराधीका विचार न करे, उसे बुद्धिमान नहीं, बल्कि मूर्ख समझना चाहिये । इसलिये कोई ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे इस मन्त्रीको अपने कियेका फल मिले, किन्तु औरोंको किसी प्रकारका कष्ट न हो ।

हरिबलका यह विचार देवदूत ताड़ गया । उसने चिताके पास जाकर उच्च-स्वरमें कहा—मेरे स्वामी यमराज बड़ेही विषम-प्रकृतिके देव हैं । यदि आपलोग अन्धाधुन्ध चितारोहण कर उनके पास पहुँचेंगे, तो वे बहुतही असन्तुष्ट होंगे । मेरी समझमें सबसे पहले उस मनुष्यको मेरे साथ चितारोहण करना चाहिये, जो राजाका सबसे अधिक प्रियपात्र हो । इसके बाद राजाको और राजाके बाद प्रजाको चितारोहण करना चाहिये ।

वैदूतकी यह बात सुनकर मदनवेगका कुटिल मन्त्री कहने लगा—हे राजन्! यदि आप आज्ञा दें तो सबसे पहले मैंही वैदूतके साथ अग्नि प्रवेश करूँ।

राजाने कहा—हाँ, तुम सहर्ष ऐसा कर सकते हो। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है। तुम्हारे बादही चितारोहण कर मैं भी आ पहुँचूँगा। तुम तब तक वहाँ पहुँचकर यमराजको को मेरे आगमनकी सूचना दो।

इस प्रकार आज्ञा मिलतेही मदनवेगका मन्त्री अपनेको कृतार्थ मानता हुआ वैदूतके साथ धधकती हुई चितामें कूद पड़ा। कूदतेही वैदूत अन्तर्धान हो गया और मन्त्री जलकर भस्म हो गया। पापीको पापकी सजा मिल गयी और हरिबलका अभीष्ट सिद्ध हो गया।

मन्त्रीके बाद राजा मदनवेग भी चितारोहण करनेको तैयार हुआ, परन्तु हरिबलने उसका हाथ पकड़ लिया। राजाने कहा—हरिबल! अब मुझे क्यों रोकते हो? मेरा हाथ छोड़ दो। मैं भी शीघ्रही अग्नि-प्रवेशकर यमराजके पास पहुँचना चाहता हूँ।

हरिबलने कहा—राजन्! मेरी बातोंमें एक गूढ़ रहस्य छिपा हुआ था। मैं जो चाहता था, वह पूरा हो गया, इसलिये उस रहस्यको प्रकट कर देना अनुचित न होगा। आप स्वस्थ होकर मेरी बातोंको सुनें और फिर आपको जैसा अच्छा लगे, वैसा करें। संसारमें जो जैसा करता है वैसाही उसे

फल भी मिलता है। इसलिये बुद्धिमानको चाहिये, कि वह बिना सोचे विचारे कोई काम न करे। यदि मैं आपको भी चितारोहणकर भस्म हो जाने दूँ, तो यह बुद्धिमत्ता न होगी। सच बात तो यह है, कि मैंने आपसे यमदेवकी मुलाकातका जो हाल कहा है, वह सत्य नहीं है। क्या किसीको मरकर फिर जिन्दा होते आपने सुना है? जिसकी एकबार मृत्यु हो जाती है, उसे फिर देवता भी जीवन-दान नहीं दे सकते। यह सब मैंने कपट रचना की थी, क्योंकि आपके मन्त्रीने दो बार आपको कुमन्त्र देकर मुझे ऐसे स्थानोंमें भिजवाया, जहाँसे मैं जिन्दा लौटही न सकता था। इसके अतिरिक्त उसने आपको भी ऐसे पथका पथिक बनाया, जिससे आपको अनेकानेक कष्ट सहन करने पड़े और आपका नैतिक पतन हुआ। यह उसीकी मन्त्रणाका फल है, कि आपके दाँत टूट गये हैं और इस समय भी वेदनाके कारण आप दुखित हो रहे हैं। उस पापीने आपके समान सज्जनको दुर्बुद्धि दी, परद्रोही और लम्पट बनाया और अनेक प्रकारसे आपको दुःख दिया। हे राजन्! सुमन्त्रीसे राजाको सुख और कुमन्त्रीसे दुःख मिलता है। आपका यह मन्त्री बड़ा कुटिल, महा नीच, और परमपातकी था। इसीलिये मैंने यह कपट रचनाकर उसका नाश किया है। व्याधि और शत्रु इन दोनोंका आरम्भहीमें नाश करना चाहिये। यदि इन्हें भविष्यमें बढ़नेका-अवसर दिया जाता है, तो फिर इनका नाश करना कठिनही नहीं, बल्कि असम्भव हो जाता है।

इसलिये हे राजन्! मैंने जान-बूझकर मन्त्रीका प्राण हरण किया है; परन्तु आपको मैं अपना स्वामी समझता हूँ। स्वामी-द्रोह भयंकर पाप है। जो लोग अपने अन्नदाताको दगा देते हैं, वे अनन्तकाल तक नरकमें घोर कष्ट सहन करते हैं। इसलिये मैं आपको चितारोहण कर कदापि प्राणनाश न करने दूँगा।

हरिबलकी यह बातें सुनकर मदनवेगको बड़ा आश्चर्य हुआ, वह लज्जित हो अपने मनमें कहने लगा, कि हरिबल मेरी सभी करतूतें जानता है। मनमें यह विचार आतेही लज्जासे उसका शिर नीचा हो गया और वह किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो, ज्यों-का-त्यों खड़ा रह गया।

मदनवेगको इस प्रकार लज्जित होते देख, हरिबलने उसे मधुर शब्दोंमें नाना प्रकारके उपदेश देकर उसकी लज्जा दूर कर दी। हरिबलके मुँहसे अद्भुत बातें सुनकर मदनवेगको ज्ञात हो गया, कि हरिबल एक दैवीशक्ति सम्पन्न पुरुष है और उसकी शक्तिके सम्मुख मेरी राजसत्ता किसी हिसाबमें नहीं है। वह मन-ही-मन हरिबलके शील स्वभाव और उसके उन्नत आत्माकी भी प्रशंसा करने लगा। वह कहने लगा, कि मैंने जिसे दो-दो बार मृत्युमुखमें ढकेल देनेकी चेष्टा की, और जिसकी स्त्रियोंको विकारपूर्ण दृष्टिसे देखा—न केवल देखाही, बल्कि जिनके अपहरण तककी चेष्टा की, वही हरिबल आज मुझे चितारोहण करनेसे रोक रहा है, यदि वह चाहता, तो आज आसानीसे बदला ले सकता था। मैं न जाने कभीका

यमपुरी पहुँच गया होता, परन्तु धन्य है, हरिबल जो कि वह मेरे अपराधोंको अपराधही नहीं समझता और मुझे दण्ड देना अनुचित समझता है। पृथ्वी-तलपर ऐसा मनुष्य मिलना कठिन है। यह मनुष्य नहीं, देवता है। इसको जितनी ही प्रशंसा की जाय उतनीही कम है। पृथ्वी ऐसेही पुण्यात्मा-ओंके पुण्य प्रतापसे मुझ समान पापियोंका भार वहन कर रही है। धन्य है, ऐसे उदारहृदय महापुरुषको! मदनवेग यही सब बातें सोचता हुआ बहुत देर तक वहीं खड़ा रहा। कभी वह अपने दुष्कर्मों के लिये पश्चाताप और कभी हरिबलकी प्रशंसा करता था। कुछ देरके बाद जब उसकी विचार निद्रा भंग हुई, तब उसने हरिबलसे क्षमा प्रार्थना की। इसके बाद खिन्नतापूर्वक इन्हीं सब बातोंपर विचार करता हुआ वह अपने महलको लौट आया।

राज्य-प्राप्ति और मोक्ष-साधन

हरिवलकी बातें सुनकर जिस प्रकार मदनवेगको आश्चर्य हुआ और वह मन-ही-मन हरिवलकी प्रशंसा करने लगा उसी प्रकार नगर-निवासियोंको भी आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि हरिवलने ऐसे दुरात्मा मन्त्रीका जो सर्वनाश किया है, वह सर्वथा उचित ही किया है। इस प्रकार हरिवलका गुणानुवाद करते हुए सब लोग अपने-अपने घर लौट आये। नगरमें कुछ दिनों तक चारों ओर, जहाँ देखो वहाँ यही चर्चा होती रही और लोग हरिवलके बुद्धि-बल की मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते रहे।

राजा मदनवेगके हृदयपर इस घटनाका इतना अधिक प्रभाव पड़ा, कि उसे वैराग्य आ गया। उसने अपने जीवनमें बहुत पातक किये थे। हरिवलने इसवार उसकी जीवन-रक्षा कर, उन पातकोंके लिये मानो उसे प्रायश्चित करनेका अवसर दिया था। मदनवेगने इस उपकारके वदलेमें हरिवलको अपनी कन्या व्याह दी और शुभ मुहूर्त्तमें अपना समूचा राज्य भी उसी को देकर, उसने सद्गुरुके पास दीक्षा ग्रहण कर ली और अन्तमें यम-नियम एवं जपतप द्वारा अपने दुष्कर्मोंका क्षयकर वह मोक्षका अधिकारी हुआ।

उधर कञ्चनपुरके नरेशको जब मालूम हुआ कि उसकी राज-कन्या भग गयी है, तब उसे बड़ा खेद हुआ। उसने चारों ओर अपने आदमियोंको राजकन्याकी खोजमें भेजा; परन्तु तत्काल उस खोजका कोई फल न हुआ। कुछ दिनोंके बाद उसने पथिकों द्वारा हरिबलका वृत्तान्त सुना, और यह भी सुना कि उसीके साथ उसकी कन्याने विवाह किया है। हरिबल अब कोई साधारण आदमी न था। वह न केवल मदनवेगके राज्यकाही उत्तराधिकारी हो गया था, बल्कि दान और धर्मादि सत्कर्म द्वारा उसने बहुत कुछ सुकीर्ति भी प्राप्त कर ली थी। हरिबलका पूर्व वृत्तान्त किसीको मालूम भी न था, इसलिये सब लोग उसे राजवंशीही समझते थे। ऐसी अवस्थामें जब कञ्चनपुरके राजाने सुना कि उसकी कन्याने हरिबलके साथ विवाह कर लिया है, तब उसे बड़ाही आनन्द हुआ और वह कहने लगा, कि मेरी कन्याने ऐसे पुरुषको पति बनाकर मेरा मुख उज्ज्वल कर दिया है। यदि मैं उसके लिये वर खोजने निकलता, तो ऐसा वर मुझे मिलता या नहीं, इसमें सन्देहही रहता।

इन विचारोंसे वसन्तश्रीके पिता वसन्तसेनको बड़ा आनन्द हुआ और उसने हरिबलको कञ्चनपुर बुला भेजा। हरिबलको भी अब वहाँ जानेमें कोई आपत्ति दिखाई न दी अतः उसने सहर्ष वसन्तसेनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और यथा समय बड़े ठाठ-बाटके साथ अपनी तीनों स्त्रियों सहित सदलबल कञ्चनपुर जा पहुँचा। राजा वसन्तसेनने उसका बड़ाही आदर सत्कार

किया और उसे अपनेही महलमें रहनेको स्थान दिया।

वसन्तश्री भी दीर्घकालके अनन्तर अपने माता पिता और आत्मीयजनोंसे मिली। वह चुपचाप बिना किसीसे कुछ कहे सुने घरसे निकल गयी थी अतः उसे कुछ कुछ लज्जा और संकोच मालूम होता था; परन्तु जब उसे यह विचार आता था, कि मैं एक बड़े नृपतिकी पटरानी हूँ, तब अभिमान और गौरवसे उसका मस्तक ऊँचा हो जाता था और लज्जाका भाव न जाने कहाँ लुप्त हो जाता था।

फिर भी वसन्तश्रीके माता पिता उसका यह भाव ताड़ गये अतः उन्होंने अपनी ओरसे ऐसी एक भी बात न कही, जिससे उसकी लज्जा और ग्लानिमें वृद्धि हो। उन्होंने उसकी पीठपर हाथ फेरते हुए बड़ेही मीठे और मधुर स्वरमें कहा—पुत्री! तूने स्वेच्छापूर्वक विवाह कर लिया यह कुछ अनुचित तो अवश्यही हुआ, परन्तु हमें यह देखकर बड़ा आनन्द होता है; कि तूने ऐसे पतिके साथ वरण किया है, जो रूप, गुण और ऐश्वर्यमें बड़ाही उत्तम और प्रभावशाली है। तुझे ऐसा पति मिला, यह वास्तवमें बड़े सौभाग्यकी बात है। लोगोंको खोज करनेपर भी ऐसे सुपात्र नहीं मिलते। तू किसी बातकी चिन्ता न कर। हमें तेरे इस कार्यसे दुःख नहीं, बल्कि आनन्द ही हुआ है।

माता पिताकी यह बातें सुनकर वसन्तश्रीका सारा सङ्कोच दूर हो गया। कुछ दिनोंके बाद वसन्तसेनने भी अपना समूचा राज्य हरिबलको सौंप दिया और आप पत्नी सहित दीक्षा ग्रहण

कर मोक्षका अधिकारी हुआ।

हरिबलके सौभाग्यकी अब सीमा न थी। वह अब दो बड़े-बड़े राज्योंका स्वतन्त्र नरेश था। परन्तु इस ऐश्वर्यसे उसके हृदयमें ज़रा भी अहंकार उत्पन्न न हुआ। वह समुद्रकी भाँति ऋद्धि-सिद्धि मिलने पर भी ज्यों-का-त्यों गंभीर ही बना रहा। यद्यपि उसने और भी कई राजकन्याओंसे विवाह कर लिया। और पूर्व पत्नियोंको पटरानी बना दिया, फिर भी ऐश्वर्य भोगकी अपेक्षा उसकी चित्त वृत्ति प्रजा पालनको ही ओर विशेष लगी रहती थी। फल यह हुआ, कि प्रजा उसे प्राणसे भी अधिक चाहने लगी और दिग्दिगन्तमें उसकी यश-कीर्ति व्याप्त हो गयी।

देखिये, श्रीतिर्थंकर जो अतुल दान देते हैं, उन्हें भी उसका फल उसी जन्ममें नहीं मिलता, परन्तु हरिबलको तो जीवहिंसाके नियमका फल उसी जन्म—बल्कि यों कहिये, कि हाथोहाथ मिल गया। उसे अब किसी वस्तुका अभाव न था। एक चक्रवर्तीके जो लक्षण माने गये हैं, वे सभी उसमें विद्यमान थे। यह सब एकमात्र अहिंसाकाही पुण्य प्रताप था।

हरिबल भी यह बात अच्छी तरहसे समझता था। वह अपने मनमें सोचा करता था, कि कहाँ मैं जड़मति धीवर—केवट और कहाँ यह अपरिमित धन और अतुल ऐश्वर्य! यह सब जीवदयाकाही प्रताप है। यदि मैंने अहिंसाका व्रत न लिया होता तो मेरी यह उन्नति कदापि न होती।

हरिबल ज्यों-ज्यों यह बातें सोचता था, त्यों-त्यों अहिंसाको

ओर उसकी अधिक रुचि बढ़ती जाती थी। एक दिन हरिबल अपने मनमें विचार करने लगा, कि जिनकी कृपासे मैं आज ऋद्धि-सिद्धि भोग रहा हूँ और जिनके उपदेशके कारण मेरी यह उन्नति हुई है, वे गुरुदेव यदि एकबार अब मुझे दर्श दें, तो मैं उनका उपदेश श्रवणकर अपनेको कृतकृत्य समझूँ।

जिस समय हरिबल यह विचार कर रहा था, उसी समय गुरुदेव अचानक वहाँ आ पहुँचे, मानो हरिबलकी अभिलाषाही उन्हें खींच लाई हो। वनपालकने हरिबलको उनके आगमनका शुभ संवाद सुनाया, हरिबलको यह जानकर यह अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वनपालकको खूब इनाम दिया। इसके बाद हरिबल बड़ेही ठाट-बाटसे गुरुदेवके पास जा, वन्दना कर धर्मोपदेश श्रवण करने लगे।

गुरुदेवका उपदेश सुनकर, हरिबल कहने लगा—हे पुण्यनिधे! आपके सदुपदेशसे ही मुझे इस ऐश्वर्यकी प्राप्ति हुई है, परन्तु हे कृपानिधान! अभी मेरे हृदयकी कमजोरियाँ दूर नहीं हुईं। मैं अब भी एक साधारण मनुष्यकी भाँति पाप-पङ्कमें लिप्त हूँ। इसलिये मुझपर कृपा कीजिये। हे भगवन्! हे दयानिधे! मुझे कोई ऐसा उपाय बतलाइये, जिससे मेरा आत्म-कल्याण हो और मैं जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाऊँ।

हरिबलकी यह बात सुनकर गुरुदेवने कहा—हे राजन्! संसारमें तेरी तरह न जाने कितने मनुष्य ऐश्वर्य भोग करते हैं, परन्तु कोई षटरस भोजनहीमें जीवनकी सार्थकता समझता है,

कोई स्त्रियोंके सहवासमेंही स्वर्गीय सुख अनुभव करता है, कोई पुष्पोंकी मालायें पहनने और चन्दनादि विलेपनमें ही आनन्द मनाता है, कोई नाच मुजरोंमें मस्त रहता है और कोई नाना प्रकारकी क्रीड़ाओंमें समय व्यतीत करता है, परन्तु इन सबोंमें धन्य वही है जिसका धर्म पर अनुराग है, जो ऐश्वर्य भोगके साथ-साथ धर्मको भी स्मरण रखता है और जो यह समझता है कि भोगकी अपेक्षा धर्मका आसन कहीं अधिक ऊँचा है।

हे राजन्! तेरी धर्मपर अभिरुचि है, यह बड़ेही आनन्दकी बात है। धर्म दो प्रकारके हैं। एक साधु धर्म और दूसरा श्रावक धर्म। इन दोनोंका मूल वास्तवमें जीव-दया ही है। जीव-दयाका पालन भली भाँति केवल त्यागी किंवा संसारसे विरक्त मनुष्यही कर सकते हैं, परन्तु संसारमें सबका त्यागी होना संभव नहीं है, इस लिये वितरागने श्रावकोंके लिये समकित सहित बारह व्रत रूप दयाधर्मका वर्णन किया है। जिस प्रकार विना जलके कमल सूख जाते हैं। उसी प्रकार दयाके विना सभी धर्म थोड़ेही समयमें नष्ट हो जाते हैं। इसलिये सबलोगोंको पूर्ण रूपसे दया धर्मकाही पालन करना चाहिये। दयाही सब धर्मोंका मूल है और उसीसे सब फलोंकी प्राप्ति होती है।

गुरुदेवका यह उपदेश श्रवणकर हरिबलने समकित सहित श्रावकके अणुव्रत पालनकी प्रतिज्ञा की और गुरुदेवके आदेशानुसार अन्य भी कितनेही व्रत ग्रहण किये। इन व्रतोंके करनेसे

हरिवलको वैसाही आनन्द हुआ, जैसा दरिद्रीको कल्प-वृक्ष मिलने पर होता है। उसने न केवल यही व्रत धारण किये, वल्कि नरक देनेवाले सात व्यसनोंका भी परित्याग किया। इसके बाद वह न्याय नीति-पूर्वक प्रजा पालन करने लगा। लंकासे वह अपने साथ जो अमृत लेते आया था, उससे भी उसने अगणित मनुष्योंको रोगमुक्त कर पुण्य-सञ्चय किया। इस प्रकार, नीच जातिमें जन्म पाकर भी हरिवलने दया-धर्मके प्रतापसे ऐश्वर्य और सुयशकी प्राप्ति की।

इसके बाद हरिवलने अपनी पहली स्त्रीको बुलाकर अपने पास रक्खा और सदुपदेश द्वारा उसके स्वभावकी कर्कशता दूर कर दी। फिर ऐश्वर्य भोग करते हुए जब बहुत दिन व्यतीत हो गये, तब हरिवलको संसारसे विरक्तिता हो गयी। उसने फिर गुरुदेवको स्मरण किया। स्मरण करनेके साथही गुरु-देव नगरमें आ उपस्थित हुए। हरिवलने अपने परिजनों सहित उनके पास जाकर उन्हें अभिवन्दन किया और कुछ उपदेश सुन-नेकी इच्छा प्रकट की।

गुरुदेवने हरिवलकी इच्छानुसार उपदेश देते हुए कहा— हे राजन्! तुझे केवल एक जीवकी रक्षाके कारण इस ऐश्वर्य की प्राप्ति हुई है, किन्तु अब यदि तू समस्त जीवोंकी रक्षाका व्रत धारण करे, तो तू मोक्षका अधिकारी हो सकता है; परन्तु इस दया धर्मका पालन चारित्र लिये विना नहीं हो सकता। श्रावकके धर्ममें केवल सवा विस्वा और त्यागीके धर्ममें वीस

विस्वा दया बतलायी गयी है। इसलिये अब तू यतिधर्म स्वीकार कर, कि जिससे इस माया मोहका नाश होकर तेरा आत्म-कल्याण हो।

गुरुदेवका यह उपदेश श्रवण कर हरिबलको पूर्ण-रूपसे वैराग्य आ गया और उसने अपने पुत्रको राज्य देकर तीनों पट-रानियों सहित दीक्षा ग्रहण कर ली। इसके बाद दीर्घकाल पर्यन्त जपतप कर कर्मक्षय होनेपर वे सब-के-सब शाश्वत सुख किंवा मोक्षके अधिकारी हुए। धन्य है दया धर्मको, जिसके पालनसे एक पतित मनुष्य भी अतुल ऐश्वर्य और अन्तमें मोक्षका अधिकारी हो सकता है।

अरशिक मुनि के एक चित्रका नमू

यदि आप अरणिक मुनिका सचित्र चरित्र पढ़ना चाहते हैं, तो हम
यहाँसे मँगवाइये इसी तरहके मनोरंजन चित्र दिये गये हैं। मूल्य
पता—पण्डित काशीनाथ जैन २०१ हरिसन रोड, कलकत